अनंद साहिब

ॐ न्नपूर्णा®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

विषय सूची

प्रकाशक की ओर से	7
पाठकों से निवेदन	9
लेखक की ओर से	10
अनंद साहिब	11
रामकली महला ३ अनंद	18
'अनंद' और आनंद	121
लावां	125
सूही महला ४ छंत घर १	131
संदर्भ सूची	153
संदर्भ ग्रंथ	156
हमारे प्रकाशन	158

अनंद साहिब

गुरु अमरदास जी

गुरु नानक साहिब द्वारा चलायी गयी गुरुमत धारा में तीसरे पूर्ण पुरुष गुरु अमरदास जी थे। आपका जीवन काल 1479–1574 ई. माना जाता है। आपका जन्म अमृतसर ज़िले के गाँव बासरके में श्री तेज भान भल्ला के घर में हुआ। आपके पिता जी और दादा हरि जी दोनों पारमार्थिक रुचि रखनेवाले नेक पुरुष थे। आप को भक्ति भावना विरासत में मिली थी।

गुरु साहिब का परिवार अपना निर्वाह व्यापार और कृषि द्वारा करता था। आप ने भी पैतृक व्यवसाय अपना लिया। सभी सांसारिक कार्य-व्यवहार करते हुए भी आप प्रभु भक्ति के लिये समय अवश्य निकाल लेते थे। तीर्थ यात्रा की ओर आपका विशेष झुकाव था। अत: आप प्रत्येक वर्ष हरिद्वार की यात्रा के लिये जाते थे। यही कारण है कि आप भक्त अमरदास के नाम से प्रसिद्ध थे। आपका हृदय निर्मल था और मन में परमार्थ की सच्ची लगन थी। हरिद्वार की बीसवीं यात्रा के समय जब आप वहाँ से पंजाब वापस लौट रहे थे, तो कुरुक्षेत्र में एक साधु ने आपसे पूछा, 'तुम्हारा गुरु कौन है ?' जब आपने कहा कि मेरा तो कोई गुरु नहीं है तो साधु ने दु:ख प्रकट किया कि वह एक निगुरे की संगति में क्यों रहा। साधु के वचन आपके मन में तीर की भाँति चुभ गये और आपके हृदय में गुरु प्राप्ति की प्रबल प्यास जाग उठी।

आपके भाई की पुत्रवधू बीबी अमरो गुरु अंगद देव जी की सुपुत्री थी। उस के मुख से गुरु साहिब की वाणी सुनकर आपके मन में गुरु साहिब के प्रति श्रद्धा पैदा हो गयी। आप खडूर साहिब में गुरु साहिब के चरणों में पहुँच गये। गुरु साहिब ने समधी के रूप में आपका बहुत सम्मान किया, परंतु आपने हाथ जोड़कर विनती की – मैं समधी नहीं, बल्कि एक याचक बनकर आपकी

शरण में आया हूँ। जब आपने नम्रतापूर्वक विनती की तो गुरु साहिब ने आपको आंतरिक शब्द का भेद दे दिया।

गुरु अमरदास जी ने 61 वर्ष की आयु में (सन् 1540 ई.) अपने से पच्चीस वर्ष छोटे और रिश्ते में समधी को गुरु धारण किया और उनकी सेवा को अपना परम कर्तव्य मान लिया। आप दिन-रात लंगर की सेवा करते और सुबह गुरु साहिब के स्नान के लिये नौ किलोमीटर दूर ब्यास नदी से जल लाते। गुरु अंगद देव जी ने अपनी मौज में अपने एक सेवक गोइंदे की विनती स्वीकार करते हुए, आपको ब्यास नदी के किनारे एक नया गाँव बसाने की सेवा बख़्श दी। यह गाँव ही बाद में गोइंदवाल साहिब के नाम से आपका मुख्य स्थान बना।

लगभग 11 वर्ष की लंबी निष्काम सेवा और साधना के फलस्वरूप गुरु अंगद देव जी ने 29 मार्च, 1552 ई. (चेत सुदी 4, वि. संवत् 1609) को ज्योति-जोत समाने से पहले आपको गुरु गद्दी सौंप दी।

गद्दीनशीन होने के पश्चात् गुरु साहिब खडूर साहिब से गोइंदवाल वापस आ गये। यहाँ आकर आपने गुरु साहिबान के उपदेश के प्रचार के लिये अलग-अलग क्षेत्रों की संगत को 22 भागों में विभाजित किया, जो 22 मंजियों के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपने इन क्षेत्रों का कार्यभार अपने विश्वसनीय साधकों को सौंपा।

गुरु साहिब ने समाज से ऊँच-नीच, छुआछूत और स्त्री-पुरुष का अंतर समाप्त करने के लिये, गुरु घर में आनेवाले सब श्रद्धालुओं को एक ही पंक्ति में बैठकर लंगर खाने का आदेश दिया। कहा जाता है कि जब अकबर बादशाह आपके दर्शनों के लिये आया तो उसने भी पंक्ति में बैठकर लंगर खाया।

गुरु साहिब ने गुरु का चक्क – जो बाद में अमृतसर के नाम से प्रसिद्ध हुआ – को आबाद करने की योजना बनायी। इस योजना के अधीन आपने गिलवाली, सुलतानविंड, तुंग, गुमटाला आदि गाँवों के मुखिया लोगों को बुलाकर चक्क का स्थान निश्चित किया और सन् 1570 ई. में इसके निर्माण कार्य की ज़िम्मेदारी भाई जेठा जी को सौंप दी। जेठा जी ही बाद में गुरु रामदास जी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

गुरु साहिब ने ज्योति-जोत समाने से पहले 1 सितम्बर, 1574 ई. (वि. संवत् 1631, भाद्रपद की पूर्णिमा) को सारी संगत के सामने जेठा जी को गुरु गद्दी सौंप दी।

वाणी

गुरु अर्जुन देव जी तथा गुरु नानक देव जी के बाद आदि ग्रन्थ में सबसे अधिक वाणी गुरु अमरदास जी की है। आदि ग्रन्थ की संपूर्ण वाणी 31 रागों के अनुसार है। गुरु अमरदास जी की वाणी 17 रागों में है। आप की वाणी के पदों, श्लोकों, छंतों, पउड़ियों आदि की कुल संख्या 873 मानी जाती है।[1]

गुरु साहिब की वाणी में छोटे आकार के श्लोकों, शब्दों या पदों के अतिरिक्त बड़े आकार की निम्नलिखित वाणियाँ भी सम्मिलित हैं:

1. वार गूजरी 22 पउड़ियाँ; वार सूही 20 पउड़ियाँ; वार रामकली 21 पउड़ियाँ; वार मारू 22 पउड़ियाँ। इन सभी वारों की पउड़ियों के साथ आप के बहुत से श्लोक भी सम्मिलित हैं।
2. सतवारा 10 पउड़ियाँ
3. पट्टी 18 पउड़ियाँ
4. अलाहणियाँ 4
5. सोलहे 24
6. अनंद 40 पउड़ियाँ[2]

'अनंद' को गुरु अमरदास जी की सर्वश्रेष्ठ कृति माना जाता है। आदर भाव से इसे 'अनंद साहिब' कहा जाता है। जब भी आदि ग्रन्थ का पाठ किसी समागम पर किया जाता है तो संगत पाठी के साथ मिलकर इसकी पहली पाँच पउड़ियाँ तथा अंतिम पउड़ी को गाती है।

अनंद का शाब्दिक अर्थ, सुख, शांति या आनंद है। गुरु अमरदास जी अपनी रचना 'अनंद' का आरंभ इस विचार के साथ करते हैं कि सतगुरु के मिलाप द्वारा आत्मा को परम आनंद तथा पूर्ण शांति की प्राप्ति हो गयी, क्योंकि सतगुरु ने प्रभु के मिलाप का मार्ग प्रशस्त कर दिया। यह आनंद वह सहज अवस्था है जिसमें आत्मा सब दु:खों, क्लेशों और चिंताओं से पूरी तरह मुक्त हो जाती है।

हर व्यक्ति के हृदय में आत्मिक आनंद की प्रबल लालसा होती है, परंतु सतगुरु की दया के बिना उस ऊँची निर्मल अवस्था की प्राप्ति संभव नहीं है। सतगुरु की दया, मोह-ममता की जड़ काटकर, जीव को जगत् के साथ बाँधकर रखनेवाली ज़ंजीर को ही तोड़ देती है। सतगुरु अपनी दया से नेत्रों में दिव्य-ज्ञान का अंजन डालकर दिव्य-दृष्टि प्रदान करते हैं तथा उत्तम जीवन युक्ति भी सिखाते हैं।

धर्म तथा दर्शन में परमात्मा के प्रेम तथा उसके मिलाप से प्राप्त होनेवाले आनंद की भरपूर चर्चा की गयी है। इस विषय पर अनेक ग्रंथ शास्त्र लिखे गये हैं, परंतु कोई कभी भी धर्म ग्रंथों को पढ़कर या कथा-कीर्तन सुनकर उस सच्चे दिव्य आनंद को प्राप्त नहीं कर सका। गुरु अमरदास जी समझाते हैं कि प्रभु से मिलाप के आनंद का निजी अनुभव केवल सतगुरु की दया द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। जब तक उस आनंद का निजी अनुभव नहीं होता, बाक़ी सब कुछ ज़बानी जमा ख़र्च, बुद्धि की युक्तियाँ तथा वाद-विवाद बनकर रह जाता है।

माया वह जादूगरनी है जिसने अपने जादू से सारे संसार को मायामय धंधों के नशे में मस्त करके, वश में किया हुआ है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं कि माया का सृजन भी प्रभु ने ही किया है और हम अपनी अधिक से अधिक चतुराई, ज्ञान तथा विवेक द्वारा भी इसके मोह-जाल से नहीं बच सकते। हम अपने यत्न द्वारा कभी भी इसके चंगुल से छुटकारा नहीं पा सकते। गुरु साहिब हमें अपने हृदय में परमात्मा का प्रेम जाग्रत करने का उपदेश देते हैं ताकि हम नीचे की ओर खींचनेवाली मायामय इच्छा-तृष्णाओं को वश में करके पूर्ण शांति के अपने अनादि घर में वापस पहुँच जायें।

गुरु अमरदास जी ने मानव शरीर को एक ऐसी गुफा कहा है, जिसके नौ दरवाज़े बाहर की ओर ख़ुलते हैं। इस गुफा में निवास करनेवाली आत्मा का इन नौ दरवाज़ों द्वारा बाहरी जगत् के साथ संबंध कायम होता है। इसका दसवाँ दरवाज़ा जो गुप्त है, अंदर हरि के मंदिर की ओर खुलता है। जीवन-मृत्यु का पूर्ण रहस्य इसी में छिपा है। इस दसवें दरवाज़े का भेद उस विरले भाग्यशाली शिष्य को प्राप्त होता है, जो सतगुरु के उपदेशानुसार नाम के अभ्यास द्वारा

नौ द्वारों से ऊपर उठकर आंतिरक रूहानी जगत् की खोज करने का प्रयत्न करता है।

सतगुरु सच्चा मार्गदर्शक है तथा नाम या शब्द आंतरिक रूहानी मार्ग पर चलने का सच्चा साधन है। प्रभु द्वारा सतगुरु के मिलाप के रूप में की गयी दया-मेहर से अंतर्मुख रूहानी प्राप्ति का आरंभ भी होता है तथा प्रभु के साथ मिलाप के आनंद की पूर्णता भी इस दया-मेहर पर ही निर्भर है।

गुरु साहिब 'अनंद' की अंतिम पउड़ी में कहते हैं कि सतगुरु की दया द्वारा शब्द के साथ जुड़ने से मन की इच्छा पूरी होती है। आत्मा को निर्मल करनेवाली शब्द की ध्वनि के साथ लिव जोड़ने से आंनद की प्राप्ति तथा दु:खों से छुटकारा भी होता है:

अनद सुणहो वडभागीहो सगल मनोरथ पूरे॥
पारब्रहम प्रभ पाइआ उतरे सगल विसूरे॥
दूख रोग संताप उतरे सुणी सची बाणी॥
संत साजन भए सरसे पूरे गुर ते जाणी॥
सुणते पुनीत कहते पवित सतिगुर रहिआ भरपूरे॥
बिनवंत नानक गुर चरण लागे वाजे अनहद तूरे॥४०॥

अनंद: रचना विधान

विचार और संरचना, सिद्धांत और इसकी प्रस्तुति, दोनों ही पक्षों से 'अनंद' अद्‌भुत गौरवमयी रचना है। इसमें संसार के सर्वोत्तम आध्यात्मिक दर्शन यानी फ़लसफ़े का सर्वोत्तम काव्य कला के साथ सुंदर मेल दिखायी देता है।

'अनंद' की वर्णन शैली अनोखी है। प्रत्येक पउड़ी की पहली पंक्ति एक सिद्धांत प्रस्तुत करती है। दूसरी पंक्ति उस सिद्धांत की पुष्टि करती है। अगली दो या तीन पंक्तियाँ उस सिद्धांत का विस्तार करती हैं और अंतिम पंक्ति, पहली पंक्तिवाले भाव को पुन: एक अलग अंदाज़ में प्रस्तुत करती है। इस प्रकार प्रत्येक पउड़ी का आरंभ, अंत से तथा अंत, आरंभ से जुड़ा हुआ है। 'अनंद' की प्रत्येक पउड़ी किसी माला के मोतियों की तरह माला का अभिन्न अंग है। इसके प्रत्येक मोती का अपना स्वतंत्र स्वरूप और स्वभाव है। प्रत्येक पउड़ी

एक नया अध्याय होते हुए भी संपूर्ण रचना की गति, प्रगति का अभिन्न अंग भी है। 'अनंद' की अपनी एक विशेष बनावट और ताना-बाना है।

गुरु साहिबान की दूसरी वाणी की तरह 'अनंद' में राग को विशेष महत्त्व दिया गया है। यह वाणी रामकली राग में गायी जाती है। इसकी चालीस पउड़ियों में से तैंतीस, पाँच-पाँच पंक्तियों की हैं और शेष सात पउड़ियाँ छः-छः पंक्तियों की है। पंक्तियों के आकार कई प्रकार के हैं, परंतु लय सबमें एक समान है। इस प्रकार यह एक सुंदर रागबद्ध रचना है।

'अनंद' की शायद ही कोई पउड़ी हो जिसमें कोई न कोई पंक्ति सूत्र का दर्जा न रखती हो। कई पउड़ियों की तो प्रत्येक पंक्ति ही सूत्र का दर्जा रखती है। ये सब सूत्र, सागर को गागर में भरते हैं। गुरु साहिब द्वारा रचित ये सूत्र लोकोक्तियों का रूप धारण करके एकदम याद हो जाते हैं तथा हृदय में गहरे उतरकर वहाँ स्थायी ठिकाना बना लेते हैं। जीवन में क़दम-क़दम पर ये सूत्र दिव्य ज्ञान के प्रकाश द्वारा अज्ञानता के अँधेरे का नाश करते हैं।

'अनंद' विचार प्रधान रचना है। इसमें अनेक विचार सूचक पद (Conceptual terms) प्रयोग किये गये हैं। आनंद, सहज, सतगुरु, सच, शब्द, नाम, अमृत, हरिरस, सच्ची वाणी, गुरु की वाणी, अनहद वाणी, अनहद शब्द, अनहद के बाजे, अनहद के तूर, सच्चा सोहिला, मंगल, पंच दूत, धुर कर्म, गुरुप्रसादि, हुक्म, माया-मोह, अकथ-कथा, मन, हृदय, आशा-तृष्णा, शिव-शक्ति, तीन गुण, भ्रम, दिव्य दृष्टि, दसवें द्वार, नौ निधियाँ आदि अनेक ऐसे पदों का प्रयोग हुआ है जो गहरी और व्यापक धारणा की ओर संकेत करते हैं। कुछ पद सैद्धांतिक हैं तो कुछ साधनामय।

काव्य कला की दृष्टि से 'अनंद' सहज ज्ञान और रस का सर्वोत्तम मिश्रण है। यह वाणी सुंदर और रसमय ढंग से परम सत्य का विवेचन करती है। सृष्टि के आदि से आनंद की प्राप्ति प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का मुख्य उद्देश्य रहा है। प्रभु का रूप हो चुके पूर्ण पुरुष निजी अनुभव के आधार पर इस वाणी द्वारा सच्चे और स्थायी आनंद की प्राप्ति के साधन तथा मार्ग का उल्लेख करते हैं। यह वाणी समय, स्थान, देश, जाति, धर्म और संप्रदाय की सीमा से ऊपर है। प्रत्येक समय, देश, जाति और धर्म का प्रत्येक प्राणी इस निर्मल, सुंदर, रसमयी

और कल्याणकारी वाणी से समान रूप में लाभ उठाकर पूर्ण और अविनाशी आनंद का अधिकारी बन सकता है।

'अनंद' एक पूर्ण दर्शन या फ़लसफ़ा भी है और जीवन शैली भी। यह रचना, मनुष्य जीवन के मुख्य उद्देश्य और उस की पूर्ति के साधन तथा मार्ग के बारे में एक पूर्ण सिद्धांत है और उस को अनुभव में बदलनेवाली जीवन शैली पर भी प्रकाश डालता है। इस रचना में सिद्धांत और संदेश एक दूसरे की उँगली पकड़कर इन्हें अनुभव में बदलने की प्रेरणा देते हुए सहज गति से आगे बढ़ते जाते हैं।

रामकली महला ३ अनंद

१ ओ सतिगुर प्रसाद॥

अनंद भइआ मेरी माए सतिगुरू मै पाइआ॥
सतिगुर त पाइआ सहज सेती मन वजीआ वाधाईआ॥
राग रतन परवार परीआ सबद गावण आईआ॥
सबदो त गावहो हरी केरा मन जिनी वसाइआ॥
कहै नानक अनंद होआ सतिगुरू मै पाइआ॥१॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 917-922

सहज सेती=सहज ही, स्वाभाविक ही; **वाधाईआ**=खुशी के गीत; **परवार**=समूह; **केरा**=का।

सरलार्थ: मेरी जननी! (मैं भाग्यशाली हूँ कि) मुझे सतगुरु के मिलाप द्वारा आनंद की प्राप्ति हो गयी है। सतगुरु की प्राप्ति स्वाभाविक ही हो गयी। इससे मन ख़ुशी से भर गया। इस अवस्था में मेरे अंदर रत्नों के समान अमूल्य राग-रागिनियाँ प्रकट हो गयीं और शब्द का प्रवाह चल पड़ा। मेरे प्रियजनो! हरि के उस शब्द की महिमा गाओ ताकि हरि मेरे मन में बस जाये। गुरु साहिब कहते हैं कि मेरा सतगुरु से मिलाप हो गया है और मैं आनंद से भरपूर हो गया हूँ।

❖ **'अनंद'**– आनंद का अर्थ है ख़ुशी, उमंग। आनंद परमात्मा का भी नाम है। आनंद शब्द का रूप पंजाबी भाषा में 'अनंद' है। इस वाणी में 'अनंद' और 'आनंद' दोनों रूप आये हैं।[1]

अनंद भइआ मेरी माए सतिगुरू मै पाइआ॥– गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि मुझे सतगुरु के मिलाप से आनंद की प्राप्ति हो गयी। 'गुर नाराइण दय गुर गुर

सचा सिरजणहार॥ गुर तुठै सभ किछ पाइआ जन नानक सद बलिहार॥'[2] गुरु साहिबान की वाणी में सतगुरु को निराकार परमेश्वर का साकार रूप माना गया है। सतगुरु परमेश्वर की तरह ही दया और आनंद रूप है। गुरु साहिब 'अनंद' का आरंभ इस विचार से करते हैं कि सतगुरु का मिलाप या उनकी शरण ही सच्चे आनंद की प्राप्ति का वास्तविक आधार है। गुरु रामदास जी के अनुसार सतगुरु की पहचान ही यह है कि उसके मिलाप द्वारा सब संशय दूर हो जाते हैं, परम पद की प्राप्ति हो जाती है तथा हृदय सच्चे आनंद से भर जाता है:

जिस मिलिऐ मन होए अनंद सो सतिगुर कहीऐ॥
मन की दुबिधा बिनस जाए हर* परम पद लहीऐ॥[3]

सतिगुर त पाइआ सहज सेती मन वजीआ वाधाईआ॥– निर्बल जीव का अपनी बल-बुद्धि द्वारा प्रभु या सतगुरु से मिलाप कर पाना असंभव है। सतगुरु का मिलाप पूरी तरह से प्रभु की दया-मेहर पर निर्भर है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि प्रभु ने दया करके सतगुरु की संगति बख़्श दी जिससे अंतर में आनंद के भंडार खुल गये।

गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

नदर करे ता गुरू मिलाए॥ हर का नाम मंन वसाए॥
हर मन वसिआ सदा सुखदाता सबदे मन ओमाहा हे॥[4]

प्रभु की दया से सतगुरु से मिलाप होता है। सतगुरु की दया से लिव नाम के साथ जुड़ जाती है और सभी सुखों का दाता वह प्रभु हृदय में बस जाता है तथा मन में शब्द की उमंग छा जाती है।

राग रतन परवार परीआ सबद गावण आईआ॥– *राग रतन* का अर्थ है: अमूल्य राग। *परीआ* का अर्थ है: रागिनियाँ। आप कहते हैं कि सतगुरु की कृपा से अंतर में शब्द की अनेक प्रकार की अमूल्य ध्वनियाँ प्रकट हो गयी हैं।

* आदि ग्रन्थ की वाणी में प्रयोग हुए 'हर' शब्द का अर्थ है—हरि।

भाई काहन सिंह नाभा ने 'जप जी' की 'सो दर' पउड़ी में 'केते राग परी सिउ कहीअन' के संदर्भ से लिखा है: यहाँ 'परी' का अर्थ रागिनी भी है।[5] 'सो दर पउड़ी' में उपर्युक्त प्रसंग इस प्रकार है:

सो दर केहा सो घर केहा जित बह सरब समाले॥
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे॥
केते राग परी सिउ कहीअन केते गावणहारे॥[6]

वह अचल, अविनाशी सहज घर, जिसमें बैठकर प्रभु सारी सृष्टि की सँभाल और संचालन कर रहा है, उसमें शब्द की अनंत राग-रागिनियाँ अर्थात् धुनें सुनायी देती हैं। उन राग-रागिनियों की गणना कर पाना असंभव है। वह राग इंद्रियों का नहीं, आत्मिक अनुभव का विषय है।

सबदो त गावहो हरी केरा मन जिनी वसाइआ॥– गुरु साहिब समझाते हैं कि शब्द की धुनें, अथार्त् राग-रागिनियाँ आनंददायक हैं। वह शब्द हरि का रूप है और उसे मन में बसाना है। स्पष्ट है कि गुरु साहिब किसी भाषा के साधारण शब्द की नहीं बल्कि उस अद्भुत शब्द की महिमा कर रहे हैं जो प्रभु का रूप है।

शब्द दो प्रकार का है: वर्णात्मक और धुनात्मक। वर्णात्मक शब्द ऐंद्रिय स्तर पर लिखने, पढ़ने, बोलने और सुनने में आता है। धुनात्मक (अनहद) शब्द शरीर के बाहरी नौ द्वारों को पार करके समाधि की अवस्था में प्रकट होता है। गुरु साहिब यहाँ उस अंतर्मुखी धुनात्मक शब्द की महिमा कर रहे हैं। गुरबानी में शब्द अधिकतर इसी अर्थ में प्रयोग किया गया है। गुरु रामदास जी का कथन है: 'हर आपे सबद सुरत धुन आपे॥'[7] शब्द उस अलख, अपार, अगम, अगोचर प्रभु का निज रूप है। इसलिये गुरु साहिब ने उसे हरि का शब्द कहा है। उस शब्द का अनुभव ध्वनि के रूप में होता है। सुरत या आत्मा भी उस शब्द का ही अंश है।

गुरु अमरदास जी का कथन है: 'एको सबद एको प्रभ वरतै सभ एकस ते उतपत चलै॥'[8] शब्द कर्ता है। प्रभु जो कुछ करता है, शब्द द्वारा करता है। इसलिये शब्द को प्रभु का शब्द कहा गया है। गुरु नानक साहिब की वाणी है: 'सचा पुरख अलख सबद सुहावणा॥ मंने नाउ बिसंख दरगह पावणा॥'[9]

शब्द अकालपुरुष का रूप है। जो कोई उसके नाम यानी शब्द से जुड़ जाता है, उसका प्रभु से मिलाप हो जाता है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

करम होवै सतिगुरू मिलाए॥ सेवा सुरत सबद चित लाए॥[10]

सबदो त गावहो हरी केरा मन जिनी वसाइआ॥– गुरु साहिब शब्द को हरि का शब्द कहते हैं क्योंकि शब्द हरि का ही रूप है। आप सुरत को शब्द के साथ जोड़ने का उपदेश दे रहे हैं, क्योंकि सुरत-शब्द का अभ्यास ही प्रभु की सच्ची भक्ति है। यही सहज आनंद यानी प्रभु प्राप्ति का एकमात्र सच्चा साधन है।

पहली पउड़ी का 'अनंद' में विशेष महत्त्व है। इस पउड़ी में गुरु साहिब ने सच्चे और स्थायी आनंद के स्वरूप और इसकी प्राप्ति के साधन का उल्लेख किया है। शेष सारा 'अनंद' पहली पउड़ी में प्रकट भाव का ही विस्तार है। 40 वीं पउड़ी में पुन: पहली पउड़ी वाला भाव ही अन्य शब्दों में दोहराया गया है। 'अनंद' में प्रवेश करनेवाला दरवाज़ा, इससे बाहर जानेवाले दरवाज़े के साथ जुड़ा हुआ है।

'अनंद' की रचना कुंडलिया छंद में की गयी है। प्रत्येक कुंडली की पहली पंक्ति को पउड़ी की अंतिम पंक्ति में दोहराया जाता है। 'अनंद' की पहली पउड़ी 40 वीं पउड़ी के साथ जुड़ी हुई है।

ए मन मेरिआ तू सदा रहो हर नाले॥
हर नाल रहो तू मंन मेरे दूख सभ विसारणा॥
अंगीकार ओह करे तेरा कारज सभ सवारणा॥
सभना गला समरथ सुआमी सो किउ मनहो विसारे॥
कहै नानक मंन मेरे सदा रहो हर नाले॥ २॥

नाले=साथ; **विसारणा**=भुला देना भाव दूर करना; **अंगीकार**=स्वीकार करना, शरण में लेना; **सवारणा**=ठीक करना, पूर्ण करना।

सरलार्थ: हे मेरे मन! तू सदा हरि के साथ जुड़ा रह, क्योंकि वह हरि ही सब दु:खों को दूर करनेवाला है। यदि वह हरि तुझे अपनी शरण में ले ले तो तेरे सभी कार्य पूर्ण हो सकते हैं। जो हरि तेरे सभी कार्य संपूर्ण

करने में समर्थ है, तू उसे क्यों भूला हुआ है ? गुरु साहिब कहते हैं: हे मेरे मन! तू सदा हरि के साथ जुड़ा रह।

❖ ***ए मन मेरिआ तू सदा रहो हर नाले॥*** – हे मेरे मन! तू सदा हरि के साथ जुड़ा रह। गुरु साहिब प्रभु के साथ जुड़े रहने का लाभ बयान करते हुए कहते हैं: ***हर नाल रहो तू मंन मेरे दूख सभ विसारणा॥*** – भले मानस! हरि के साथ जुड़े रहने में तुम्हारा बहुत लाभ है। तू हरि यानी उसके शब्द के साथ जुड़ा रहेगा तो तेरे सभी दु:खों का नाश हो जायेगा। यही नहीं, ***अंगीकार ओह करे तेरा कारज सभ सवारणा॥*** – अगर तुझे उसकी शरण प्राप्त हो जायेगी, तो तेरे सभी कार्य संपूर्ण हो जायेंगे। ***सभना गला समरथ सुआमी सो किउ मनहो विसारे॥*** – गुरु साहिब प्रश्न करते हैं: भले मानस! तू उस सर्वसमर्थ प्रभु को बिसारने की मूर्खता क्यों करता है ? तेरा वास्तविक उद्देश्य यही है कि तेरे सभी दु:ख दूर हो जायें, तुझे सर्वश्रेष्ठ सुख प्राप्त हो जाये, फिर तू उस सर्वशक्तिमान् स्वामी की शरण क्यों नहीं लेता जो तुझे सभी दु:खों से मुक्त करके पूर्ण और अविनाशी सुख प्रदान कर सकता है ? ***कहै नानक मंन मेरे सदा रहो हर नाले॥*** – गुरु साहिब उपदेश देते हैं मेरे प्यारे मन! तू हर ओर से ध्यान हटाकर अपनी लिव उस आनंदमय प्रभु के शब्द के साथ जोड़।

साचे साहिबा किआ नाही घर तैरै॥
घर त तैरै सभ किछ है जिस देह सो पावए॥
सदा सिफत सलाह तेरी नाम मन वसावए॥
नाम जिन कै मन वसिआ वाजे सबद घनेरे॥
कहै नानक सचे साहिब किआ नाही घर तैरै॥ ३॥

वसावए=बसाना; **सिफत**=गुण; **घनेरे**=भरपूर।

सरलार्थ: हे सच्चे मालिक! तेरे घर में कौन-सी वस्तु की कमी है ? तेरे घर में हर वस्तु है, पर तू जिसे जो देता है, उसे वही वस्तु मिलती है। जिसे तू चाहता है, वही तेरा गुणगान कर सकता है और वही तेरे नाम

को मन में बसाता है। जिनके मन में नाम बस जाता है, उनके अंदर शब्द की भरपूर धुनें सुनायी देने लगती हैं। हे साहिब! तेरे घर में किसी चीज़ की कमी नहीं है।

❖ ***साचे साहिबा किआ नाही घर तैरै॥***
घर त तैरै सभ किछ है जिस देह सो पावए॥

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि यह ठीक है कि उस सच्चे साहिब के भंडार अनंत दातों से भरे हुए हैं। उसके भंडार में किसी चीज़ की कमी नहीं, परंतु जिसको जो कुछ भी मिलता है, उस दाता की रज़ा और दया से मिलता है। लोक-परलोक की जो भी दात या बड़ाई मिलती है, दाता की मौज से मिलती है। गुरु साहिब वाणी के एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

आपे देवै देवणहारा॥ तिस आगै नही किसे का चारा॥
आपे बखसे सबद मिलाए तिस दा सबद अथाहा हे॥[11]

जिसको जो कुछ देता है, दयालु दाता अपनी मौज से देता है। उसके साथ ज़बरदस्ती या चालाकी नहीं चल सकती। जिसको उसने बख़्शना होता है, दया करके अपने अगम-अथाह शब्द की दात बख़्श देता है।

सदा सिफत सलाह तेरी नाम मन वसावए॥ प्रभु का गुणगान यानी भक्ति केवल वही कर सकता है, जिसके मन में वह प्रभु स्वयं अपना प्रेम और विश्वास उत्पन्न करता है और जिसे वह स्वयं अपने नाम की दात प्रदान करता है। गुरु साहिब वाणी के एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

बिख अंम्रित करतार उपाए॥ संसार बिरख कउ दुए फल लाए॥
आपे करता करे कराए॥ जो तिस भावै तिसै खवाए॥
नानक जिस नो नदर करे॥ अंम्रित नाम आपे दे॥[12]

माया का विष भी प्रभु का पैदा किया हुआ है और नाम का अमृत भी उस सृजनहार ने ही उत्पन्न किया है। जिस पर उसकी दया हो जाती है, उसे वह नाम का अमृत बख़्श देता है, जिससे माया के विष का नाश हो जाता है।

नाम जिन कै मन वसिआ वाजे सबद घनेरे॥
कहै नानक सचे साहिब किआ नाही घर तेरै॥

जिनके मन में प्रभु अपना नाम बसा देता है उनके अंदर शब्द की प्रबल धुनों का प्रवाह जारी हो जाता है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

धुन वाजे अनहद घोरा॥ मन मानिआ हर रस मोरा॥[13]

जब अंतर में अनहद शब्द की प्रबल ध्वनि गूँजती है तो उसके आनंद में मग्न होकर मन सांसारिक पदार्थों के पीछे भटकना छोड़कर स्थिर हो जाता है।

साचा नाम मेरा आधारो॥
साच नाम अधार मेरा जिन भुखा सभ गवाईआ॥
कर सांत सुख मन आए वसिआ जिन इछा सभ पुजाईआ॥
सदा कुरबाण कीता गुरू विटहो जिस दीआ एह वडिआईआ॥
कहै नानक सुणहो संतहो सबद धरहो पिआरो॥
साचा नाम मेरा आधारो॥४॥

गवाईआ=समाप्त करना, मिटाना; **वसिआ**=बस गया, समा गया; **पुजाईआ**=पूरी कर दी; **गुरू विटहो**=गुरु पर।

सरलार्थ: हे मेरे मालिक! तेरा सच्चा नाम मेरे जीवन का आधार है, मेरे जीवन का सहारा है। इस नाम ने मेरी हर प्रकार की भूख मिटा दी है। इसने मन को शांत करके सुख से भर दिया है और सब इच्छाएँ पूर्ण कर दी हैं। मैं अपने गुरु पर बलिहारी जाता हूँ क्योंकि यह सब सतगुरु की ही बड़ाई है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं: संतो! मेरी बात मानकर शब्द से प्रेम कर लो। यह सच्चा शब्द यानी नाम ही मेरे जीवन का आधार है।

❖ ***साचा नाम मेरा आधारो॥***
साच नाम अधार मेरा जिन भुखा सभ गवाईआ॥
कर सांत सुख मन आए वसिआ जिन इछा सभ पुजाईआ॥

गुरु साहिब फ़रमाते हैं: उस दयालु दाता की कृपा से मैंने उसके नाम को अपने जीवन का आधार बना लिया है। नाम ने मेरा मन तृप्त कर दिया है। इसने मेरी सब प्रकार की भूख दूर कर दी है, सब इच्छाएँ पूरी कर दी हैं। यहाँ सब इच्छाएँ पूर्ण करने से भाव प्रभु के साथ मिलाप की सर्वश्रेष्ठ इच्छा के पूर्ण होने से है। जब यह इच्छा पूर्ण हो जाती है तो कोई इच्छा शेष नहीं रहती। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि सब दु:खों को दूर करके पूर्ण, अविनाशी सुख बख़्शने वाला सारपदार्थ प्रभु का नाम है। गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

विण तुध होर जि मंगणा सिर दुखा कै दुख॥
देह नाम संतोखीआ उतरै मन की भुख॥[14]

आप समझाते हैं कि जब नाम मन में बस जाता है तो मन संतोष से भर जाता है, फिर माया की सब तृष्णाएँ शांत हो जाती हैं। इसलिये प्रभु से केवल नाम की दात माँगनी चाहिये।

सदा कुरबाण कीता गुरू विटहो जिस दीआ एह वडिआईआ॥– गुरु साहिब कहते हैं कि बलिहारी जायें अपने सतगुरु पर, जिन्होंने नाम के साथ लिव जोड़कर उस ऊँची अवस्था का अधिकारी बना दिया है, जिससे सब इच्छाएँ शांत हो गयी हैं और परम सुख की प्राप्ति हो गयी है। गुरु साहिब की वाणी है:

बलिहारी गुर अपणे विटहो जिन साचे सिउ लिव लाई॥
सबद चीन्ह आतम परगासिआ सहजे रहिआ समाई॥[15]

गुरु अर्जुन साहिब की वाणी है:

बलिहारी गुर आपने चरनन्ह बल जाउ॥
अनद सूख मंगल बने पेखत गुन गाउ॥
कथा कीरतन राग नाद धुन इह बनिओ सुआउ॥
नानक प्रभ सुप्रसंन भए बांछत फल पाउ॥[16]

वाजे पंच सबद तित घर सभागै॥
घर सभागै सबद वाजे कला जित घर धारीआ॥
पंच दूत तुध वस कीते काल कंटक मारिआ॥
धुर करम पाइआ तुध जिन कउ से नाम हर कै लागे॥
कहै नानक तह सुख होआ तित घर अनहद वाजे॥५॥

तित=उस; **घर**=भाव शरीर; **सभागै**=भाग्यशाली; **धारीआ**=धारण की; **कंटक**=काँटा।

सरलार्थ: वह शरीररूपी घर भाग्यशाली है जिसमें पाँच शब्द सुनायी देते हैं। पाँच शब्द केवल उस भाग्यशाली घर में सुनायी देते हैं जिसमें तू अपनी नामरूपी दया बाँटता है। हे प्रभु! इस प्रकार तू काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकाररूपी पाँच विकार उसके वश में कर देता है और काल का काँटा नष्ट कर देता है। हे प्रभु! तू स्वयं धुर से जिनके भाग्य में लिखता है, केवल वही तेरे नाम के साथ जुड़ते हैं। गुरु साहिब कहते हैं: जो जीव नाम के साथ जुड़ जाते हैं, वे सुखी हो जाते हैं और उनके अंदर अनहद शब्द की धुन गूँजने लगती है।

❖ गुरु साहिब पहली पउड़ी में '*सबदो त गावहो हरी केरा*' द्वारा तथा तीसरी पउड़ी में '*नाम जिन कै मन वसिआ वाजे सबद घनेरे॥*' द्वारा और चौथी पउड़ी में '*साचा नाम मेरा आधारो॥*' और '*कहै नानक सुणहो संतहो सबद धरहो पिआरो॥*' द्वारा शब्द यानी नाम की महिमा बखान कर आये हैं। उसी विषय को आगे बढ़ाते हुए, आप कुछ अन्य गूढ़ रहस्य समझा रहे हैं:

वाजे पंच सबद तित घर सभागै॥
घर सभागै सबद वाजे कला जित घर धारीआ॥

आप फ़रमाते हैं कि पाँच शब्द उस भाग्यशाली घर, भाव हृदय में प्रकट होते हैं जिस पर उस कर्ता की दया-मेहर होती है।

ये पाँच शब्द गुरु साहिब की विचारधारा का बहुत महत्त्वपूर्ण अंग हैं। आप वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

अंदर महल अनेक हह जीउ करे वसेरा॥
मन चिंदिआ फल पाइसी फिर होए न फेरा॥[17]

अंदर सबसे ऊँचे रूहानी मंडल में पहुँचने के लिये आत्मा को कई निचले मंडलों में से गुज़रना पड़ता है। गुरु नानक साहिब का कथन है: '*देही नगरी ऊतम थाना॥ पंच लोक वसह परधाना॥*'[18] अंतर के अनेक मंडलों में से पाँच प्रमुख हैं। जिस तरह पानी की आवाज़ झील में, झील से झरना बनकर पर्वत से नीचे गिरते समय, खड्डों और मैदानों से गुज़रते समय, नदी के मुहाने से गुज़रकर समुद्र में समाते समय अलग-अलग सुनायी देती है, उसी प्रकार शब्द एक ही है, परंतु हर मंडल की प्रकृति के अनुसार, वहाँ उसकी आवाज़ अलग रूप में सुनायी देती है। पाँच प्रमुख मंडलों में शब्द की अलग-अलग रूप में सुनायी देनेवाली ध्वनियों को पाँच शब्द कहा जाता है। हर मंडल का शब्द आत्मा को निचले मंडल से ऊपर के मंडल में खींच कर लाने का साधन है। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि पूरा गुरु शिष्य को शरीररूपी घर के अंदर हो रहे पाँच शब्दों का भेद बख़्शता है और शब्द-दर-शब्द सबसे ऊँचे रूहानी मंडल सचखण्ड पहुँचने में सहायता करता है:

घर मह घर देखाए देए सो सतिगुर पुरख सुजाण॥
पंच सबद धुनिकार धुन तह बाजै सबद नीसाण॥[19]

आप फ़रमाते हैं:

अनदिन मेल भइआ मन मानिआ घर मंदर सोहाए॥
पंच सबद धुन अनहद वाजे हम घर साजन आए॥[20]

परमेश्वर के दरबार में पहुँचने पर आत्मा का उससे मिलाप होता है और उसको वहाँ शब्द की पाँच ध्वनियाँ सुनायी देती हैं। भाई वीर सिंह उपर्युक्त पंक्तियों की व्याख्या करते हुए लिखते हैं: घर से तात्पर्य दसवें द्वार से होता है। इस संदर्भ में दो बातें हैं, अनहद बाजे कैसे बजते हैं और उनका प्रभाव क्या है? हरि के नाम में लीन होने से ये बाजे बजते हैं, अन्य साधनों की आवश्यकता नहीं बतायी गयी। पाँचवें गुरु साहिब ने भी कहा है – '*प्रभ कै सिमरन अनहद झुनकार॥*'[21] गुरु साहिब की वाणी है:

पंच दूत तुध वस कीते काल कंटक मारिआ॥
धुर करम पाइआ तुध जिन कउ से नाम हर कै लागे॥

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि विषय-विकारों का नाश करके चौरासी के चक्कर से मुक्त करनेवाला नाम प्रभु द्वारा धुर के लेख के अनुसार मिलता है।

भै निरभउ हर अटल मन सबद गुर नेजा गडिओ॥
काम क्रोध लोभ मोह अपत पंच दूत बिखंडिओ॥[22]

सतगुरु की कृपा से शब्द के शक्तिशाली भाले (नेजे) ने पाँच विकारों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

नाम निधान जिन जन जपिओ तिन के बंधन काटे॥
काम क्रोध माइआ बिख ममता इह बिआध ते हाटे॥[23]

गुरु साहिब वाणी के दूसरे प्रसंग में कहते हैं:

सबद मरहो फिर जीवहो सद ही ता फिर मरण न होई॥
अंम्रित नाम सदा मन मीठा सबदे पावै कोई॥
दातै दात रखी हथ अपणै जिस भावै तिस देई॥
नानक नाम रते सुख पाइआ दरगह जापह सेई॥[24]

आप कहते हैं कि आवागमन के बंधनों से मुक्त करके धुर दरगाह (परमधाम) में पहुँचने की बड़ाई बख़्शनेवाले नाम की दात, उस दाता ने अपने हाथ में रखी हुई है। यह दात वह अपनी रज़ा यानी मौज के अनुसार देता है।

गुरु साहिबान की वाणी में धुर कर्म को धुर मस्तक का लेख, धुर का लेख, पूर्व का लेख आदि भी कहा गया है। इस के द्वारा गुरु साहिबान यह भाव दृढ़ करवाते हैं कि प्रभु की रज़ा से संसार में आया जीव, केवल उसकी दया द्वारा ही निज घर वापस पहुँच सकता है। दूसरे शब्दों में जीव का रचना से मुक्त होकर फिर से अपने रचयिता परमात्मा में समाना, जीव की बल-बुद्धि या यत्न पर

नहीं बल्कि प्रभु द्वारा धुर दरगाह से की गयी दया-मेहर पर निर्भर है। निर्बल, अज्ञानी जीव का सर्वसमर्थ और सर्वज्ञाता प्रभु को अपनी बल-बुद्धि द्वारा प्राप्त कर पाना असंभव है। प्रभु ख़ुद उस पर दया करके उसको अपने नाम से जोड़े तभी जीव उसके साथ मिल सकता है।

गुरु साहिबान ने सृष्टि को प्रभु का खेल, नाटक, लीला आदि कहा है। किस पात्र ने कौन-सी भूमिका अदा करनी है, किस समय रंगमंच पर आना है तथा किस समय अपनी भूमिका पूरी करके रंगमंच से उतर जाना है, इसका निर्णय नाटककार करता है, पात्र नहीं। प्रभु किस आधार पर जीव को मुक्त करके अपने साथ मिलाने का फ़ैसला करता है, यह केवल वही जानता है। गुरु नानक साहिब कहते हैं:

धुर करम जिना कउ तुध पाइआ ता तिनी खसम धिआइआ॥
एना जंता कै वस किछ नाही तुध वेकी जगत उपाइआ॥[25]

गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

जिन कउ पूरब लिखिआ सेई नाम धिआए॥
नानक गुर सरणागती मरै न आवै जाए॥[26]

कहै नानक तह सुख होआ तित घर अनहद वाजे॥– जो जीव प्रभु की दया से नाम के साथ जुड़ जाते हैं, उनके अंदर अनहद शब्द की ध्वनि सुनायी देने लगती है और उन्हें सच्चे सुख की प्राप्ति हो जाती है।

गुरु साहिब ने शब्द के साथ 'अनहद' पद जोड़ा है। अनहद का अर्थ है जो आदि-अंत से परे हो। कुछ प्रसंगों में शब्द के साथ अनाहत अथवा अनहत पद का भी प्रयोग है जिसका अर्थ है जो किसी साधन के बिना स्वयं गूँज रहा है।

गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं: 'उतपत परलउ सबदे होवै॥ सबदे ही फिर ओपत होवै॥'[27] शब्द ही परमात्मा की सृष्टि की रचना और इसका विनाश करनेवाली शक्ति है। न परमात्मा का कोई आदि-अंत है और न ही शब्द का। इसलिये उसको अनहद शब्द कहा जाता है।

गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

सरब थान को राजा॥ तह अनहद सबद अगाजा॥[28]

सारी सृष्टि के स्वामी प्रभु के दरबार में अनहद शब्द गूँज रहा है। गुरु नानक साहिब का कथन है:

तिस रूप न रेख अनाहद वाजै सबद निरंजन कीआ॥[29]

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

दर वाजह अनहत वाजे राम॥ घट घट हर गोबिंद गाजे राम॥[30]

साची लिवै बिन देह निमाणी॥
देह निमाणी लिवै बाझहो किआ करे वेचारीआ॥
तुध बाझ समरथ कोए नाही क्रिपा कर बनवारीआ॥
एस नउ होर थाउ नाही सबद लाग सवारीआ॥
कहै नानक लिवै बाझहो किआ करे वेचारीआ॥ ६॥

लिवै=लगन, प्रगाढ़ प्रेम; **निमाणी**=दीन-हीन।

सरलार्थ: जब तक प्रभु के साथ सच्ची लगन नहीं लगती, मनुष्य देह का महत्त्व नहीं है। प्रभु प्रेम की सच्ची लगन के बिना यह दीन-हीन देह क्या कर सकती है? सच्ची लगन के बिना यह बेचारी किसी काम की नहीं। हे दाता! तेरे बिना किसी दूसरे में यह सामर्थ्य नहीं कि सच्ची लगन की दात बख़्श सके। तू स्वयं ही कृपा करके यह दात बख़्श दे। जीवात्मा को तेरे और तेरे नाम के अतिरिक्त दूसरा कोई सहारा नहीं। तू इसे अपने शब्द के साथ जोड़कर सँवार ले। गुरु साहिब कहते हैं: सच्ची लगन के बिना यह देह निमाणी (दीन-हीन), निर्बल और बेसहारा है।

❖ ***साची लिवै बिन देह निमाणी॥***
देह निमाणी लिवै बाझहो किआ करे वेचारीआ॥

पाँचवीं पउड़ी में समझाया गया है कि जब लिव अंदर जुड़ जाये तो अनहद शब्द की पाँच प्रमुख ध्वनियाँ सुनायी देने लगती हैं जिससे अकथनीय आनंद की प्राप्ति होती है। अब समझा रहे हैं कि चाहे मनुष्य शरीर सृष्टि का सिरताज है, परंतु शब्द के साथ लिव जोड़े बिना, इस की कौड़ी के बराबर क़ीमत नहीं। आपका भाव है कि मनुष्य जन्म तभी सफल है जब जीव की लिव शब्द के साथ जुड़ जाये। आपकी वाणी है:

लिव धात दुए राह है हुकमी कार कमाए॥
गुरमुख आपणा मन मारिआ सबद कसवटी लाए॥
.....
गुर परसादी मन जिणै हर सेती लिव लाए॥
नानक गुरमुख सच कमावै मनमुख आवै जाए॥[31]

गुरु साहिब कहते हैं: दो रास्ते हैं – एक माया के प्रेम का और दूसरा प्रभु के प्रेम का। जो व्यक्ति सतगुरु की कृपा से मन को जीतकर शब्द से जुड़ जाता है, वह माया के मोह से मुक्त हो जाता है। उसकी लिव परमेश्वर के साथ जुड़ जाती है। वह आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाता है। इससे उलट माया के मोह में फँसा मनमुख जीव, सदैव जन्म-मरण के दु:खदायी चक्कर में पड़ा रहता है। गुरु रामदास जी का कथन है:

इह मिरतक मड़ा सरीर है सभ जग जित राम नाम नही वसिआ॥
राम नाम गुर उदक चुआइआ फिर हरिआ होआ रसिआ॥[32]

आप कहते हैं कि नाम से लिव टूटी हुई है, तो शरीर मुर्दा या श्मशान के समान है। नाम के साथ लिव जुड़ी हुई है, तो यह जीवन और आनंद का अपार भंडार है।

तुध बाझ समरथ कोए नाही क्रिपा कर बनवारीआ॥
एस नउ होर थाउ नाही सबद लाग सवारीआ॥
कहै नानक लिवै बाझहो किआ करे वेचारीआ॥

जब तक जीवात्मा शब्द के साथ नहीं जुड़ती, तब तक यह निर्बल ही नहीं, मैली और कुरूप भी है। इसका सच्चा शृंगार शब्द है। इसकी कर्मों, संस्कारों, आशाओं और तृष्णाओं, विषय-विकारों की मैल केवल शब्द के साथ जुड़ने से ही दूर हो सकती है। यह शब्द के साथ जुड़कर शक्तिशाली और सुंदर बनकर तेरे चरणों में पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है। इसलिये तू अपनी दया द्वारा जैसे भी हो इसे शब्द के साथ जोड़कर सँवार ले।

आनंद आनंद सभ को कहै आनंद गुरू ते जाणिआ॥
जाणिआ आनंद सदा गुर ते क्रिपा करे पिआरिआ॥
कर किरपा किलविख कटे गिआन अंजन सारिआ॥
अंदरहो जिन का मोह तुटा तिन का सबद सचै सवारिआ॥
कहै नानक एह अनंद है आनंद गुर ते जाणिआ॥७॥

किलविख=पाप; **सारिआ**=लगाना, सँवारना।

सरलार्थ: कहने को तो हर कोई आनंद-आनंद कहता है, पर सच्चे आनंद की समझ गुरु से प्राप्त होती है। मेरे प्यारे! आनंद की सूझ जब भी होती है, केवल गुरु की कृपा द्वारा होती है। गुरु शिष्यों पर कृपा करके उनके सारे पाप नष्ट कर देता है और उनकी आँखों में ज्ञान का सुरमा डालकर उन्हें सँवार देता है। उनके मन से मोह का नाश हो जाता है और सच्चा शब्द उनके मन और आत्मा को सँवार देता है। गुरु साहिब कहते हैं: यही सच्चा आनंद है और इस आनंद की सूझ गुरु से प्राप्त होती है।

❖ ***आनंद आनंद सभ को कहै आनंद गुरू ते जाणिआ॥***
जाणिआ आनंद सदा गुर ते क्रिपा करे पिआरिआ॥

अपनी ओर से तो संसार के सभी लोग आनंद की आवश्यकता अनुभव करते हैं। वे आनंद की प्राप्ति के साधन और मार्ग के बारे में बढ़-चढ़कर बातें करते हैं। वे अपनी-अपनी सोच के अनुसार आनंद की प्राप्ति के लिये प्रयत्न

भी करते हैं। परंतु समस्या यह है कि वास्तव में लोगों को न तो सच्चे आनंद का ज्ञान है और न ही यह पता है कि उसे कहाँ और कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

गुरु साहिब ने 'अनंद' का आरंभ ही 'अनंद भइआ मेरी माए सतिगुरू मै पाइआ' से किया था। आप उसी भाव को दृढ़ करवाते हुए कहते हैं: जाणिआ आनंद सदा गुर ते – आनंद के साधन और मार्ग का ज्ञान भी गुरु के मिलाप द्वारा होता है तथा आनंद की प्राप्ति भी सतगुरु की कृपा द्वारा ही होती है।

कर किरपा किलविख कटे गिआन अंजन सारिआ – जब सतगुरु जीवात्मा की आँखों में सच्चे ज्ञान का अंजन (सुरमा) डालता है, तो इसके सब पापों का नाश हो जाता है। सतगुरु की कृपा द्वारा अज्ञानता का अँधेरा दूर हो जाता है। ज्ञान के सुरमे का अर्थ भी शब्द के साथ लिव जोड़ना है। गुरु साहिब ग्रंथों और शास्त्रों में प्राप्त होनेवाले वाचक ज्ञान की बात नहीं कर रहे। 'गिआन' से आपका अभिप्राय अंतर्मुखी निजी अनुभव से है। वह ज्ञान सतगुरु से प्राप्त होता है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

गुर गिआन अंजन सच नेत्री पाइआ॥
अंतर चानण अगिआन अंधेर गवाइआ॥
जोती जोत मिली मन मानिआ हर दर सोभा पावणिआ॥[33]

गुरु रामदास जी की वाणी है:

हर सतिगुर हर सतिगुर मेल हर सतिगुर चरण हम भाइआ राम॥
तिमर अगिआन गवाइआ गुर गिआन अंजन गुर पाइआ राम॥
गुर गिआन अंजन सतिगुरू पाइआ अगिआन अंधेर बिनासे॥
सतिगुर सेव परम पद पाइआ हर जपिआ सास गिरासे॥[34]

आप वही भाव दोहराते हुए कहते हैं: जब सतगुरु की दया से आँखों में नामरूपी ज्ञान का अंजन डाला, तो प्रभु नाम के सुमिरन का निरंतर प्रवाह चल पड़ा। इससे अज्ञान का अंधकार मिट गया तथा परम पद की प्राप्ति हो गयी।

अंदरहो जिन का मोह तुटा तिन का सबद सचै सवारिआ
कहै नानक एह अनंद है आनंद गुर ते जाणिआ॥

जब सुरत अंदर शब्द के साथ जुड़ जाती है, तो मोह के बंधन टूट जाते हैं। फिर जीवात्मा की सब मैल दूर हो जाती है तथा वह निर्मल होकर प्रभु के साथ मिलने के योग्य हो जाती है। शब्द के रस द्वारा पापों, मायामय शक्लों और पदार्थों के मोह का नाश हो जाता है और आत्मा आनंद स्वरूप प्रभु में समाकर उसका रूप हो जाती है। यही सच्चा आनंद है और इसकी प्राप्ति गुरु द्वारा होती है।

बाबा जिस तू देह सोई जन पावै॥
पावै त सो जन देह जिस नो होर किआ करह वेचारिआ॥
इक भरम भूले फिरह दह दिस इक नाम लाग सवारिआ॥
गुर परसादी मन भइआ निरमल जिना भाणा भावए॥
कहै नानक जिस देह पिआरे सोई जन पावए॥८॥

सरलार्थ: हे साहिब! (गुरु द्वारा) जिसे जो कुछ मिलता है, तेरा दिया ही मिलता है, जिसे तू देता है, केवल वही इसे प्राप्त करता है, बाक़ी बेचारे निर्बल जीव क्या कर सकते हैं? अनेक लोग भ्रम या अज्ञान में फँसकर दसों दिशाओं में स्थान-स्थान पर आनंद ढूँढ़ते फिर रहे हैं, परंतु कुछ लोगों को तू अपनी कृपा द्वारा शब्द के साथ जोड़कर सँवार देता है। गुरु की कृपा से जिन्हें गुरु और प्रभु का भाणा अच्छा लगने लगता है, उनका मन निर्मल हो जाता है। गुरु साहिब कहते हैं: मेरे प्यारे! जिसको तू देता है वही उसे प्राप्त कर सकता है।

❖ ***बाबा जिस तू देह सोई जन पावै॥***
पावै त सो जन देह जिस नो होर किआ करह वेचारिआ॥
इक भरम भूले फिरह दह दिस इक नाम लाग सवारिआ॥

इन पंक्तियों को पाँचवीं पउड़ी के साथ जोड़ने से यह भाव प्रकट होता है कि कोई भी जीव स्वयं आनंद प्राप्त नहीं कर सकता। सच्चा आनंद जिसे भी मिलता है, प्रभु की कृपा द्वारा नाम के साथ लिव जोड़ने से मिलता है।

इन पंक्तियों में प्रकट भाव को तीसरी पउड़ी में वर्णन किये गये भाव से मिलाकर भी पढ़ा जा सकता है: '*घर त तेरे सभ किछ है जिस देह सो पावए॥*' गुरु साहिब यह भाव दृढ़ करवा रहे हैं कि जिसको जो कुछ मिलता है, प्रभु की दया-मेहर से मिलता है। अपनी ओर से पूरी कोशिश करने के बावजूद जीव, मनचाहा फल प्राप्त नहीं कर सकता। गुरु साहिब वाणी के एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

दातै दात रखी हथ आपणै जिस भावै तिस देई॥
नानक नाम रते सुख पाइआ दरगह जापह सेई॥[35]

गुरु नानक साहिब की वाणी है:

इह जग सचै की है कोठड़ी सचे का विच वास॥
इकन्हा हुकम समाए लए इकन्हा हुकमे करे विणास॥
इकन्हा भाणै कढ लए इकन्हा माइआ विच निवास॥
एव भि आख न जापई जि किसै आणे रास॥
नानक गुरमुख जाणीऐ जा कउ आप करे परगास॥[36]

जो कुछ हो रहा है, कर्ता की इच्छा के अनुसार हो रहा है। वह जिसको चाहता है, माया से बाहर निकाल लेता है; जिसको नहीं चाहता, वह उसी में फँसा रहता है। कोई नहीं कह सकता कि वह किसको सुधारेगा और किसको नहीं। जिसको प्रभु ज्ञान या सूझ बख़्शता है, वही गुरुमुखों की संगति में पहुँचकर उसकी प्राप्ति के सच्चे मार्ग पर चल सकता है।

गुरु साहिब हमें बार-बार यह विचार दृढ़ करवा रहे हैं कि शब्द, नाम, प्रभु यानी आनंद की प्राप्ति जीवात्मा की इच्छा पर नहीं, प्रभु की रज़ा और दया पर निर्भर है।

गुर परसादी मन भइआ निरमल जिना भाणा भावए॥
कहै नानक जिस देह पिआरे सोई जन पावए॥

सतगुरु की कृपा द्वारा जिन्हें प्रभु का भाणा यानी हुक्म प्यारा लगना शुरू हो जाता है, वह मनमत छोड़कर प्रभु की रज़ा में आ जाते हैं। उन्हें अहंकार के रोग से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। गुरु साहिब वाणी के दूसरे प्रसंग में कहते हैं:

हुकम भी तिन्हा मनाइसी जिन्ह कउ नदर करे॥
हुकम मंन सुख पाइआ प्रेम सुहागण होए॥[37]

गुरु नानक साहिब एक ही भाव का दो तरह से वर्णन करते हैं:

हुकम जिना नो मनाइआ॥ तिन अंतर सबद वसाइआ॥[38]

सतगुरु की शरण में वही पहुँचता है जिस पर कर्ता पुरुष की दया होती है और शब्द के साथ जुड़कर आनंद का अधिकारी भी वही बनता है, जिसे सतगुरु अपनी दया द्वारा शब्द के साथ जोड़ देता है।

आवहो संत पिआरिहो अकथ की करह कहाणी॥
करह कहाणी अकथ केरी कित दुआरै पाईऐ॥
तन मन धन सभ सउप गुर कउ हुकम मंनिऐ पाईऐ॥
हुकम मंनिहो गुरू केरा गावहो सची बाणी॥
कहै नानक सुणहो संतहो कथिहो अकथ कहाणी॥ ९॥

केरी=की; **सउप**=सौंपना, अर्पण करना।

सरलार्थ: प्यारे संतजनो! आओ मिलकर उस अकथ हरि की कथा अर्थात् गुणगान करें, उस अगम अगोचर प्रभु की महिमा करें और यह जानने का प्रयत्न करें कि वह किस युक्ति द्वारा प्राप्त हो सकता है। मेरे प्रेमीजनो! उस अलख-अपार हरि को पाने की युक्ति यह है कि अपना तन, मन, धन गुरु को अर्पण करके उसके हुक्म का पालन करें।

मेरे प्रियजनो! हरि के साथ मिलना चाहते हो तो गुरु का हुक्म मानकर लिव सच्ची वाणी के साथ जोड़ लो। गुरु साहिब कहते हैं: हे संतो! इस युक्ति द्वारा उस अकथ प्रभु का गुणगान करो।

❖ ***आवहो संत पिआरिहो अकथ की करह कहाणी॥***
करह कहाणी अकथ केरी कित दुआरै पाईऐ॥
तन मन धन सभ सउप गुर कउ हुकम मंनिऐ पाईऐ॥

परमेश्वर को अकथ-अकह कहा गया है। गुरु साहिब का भाव है कि बेशक परमेश्वर का वर्णन नहीं किया जा सकता, परंतु इसका यह मतलब नहीं है कि उसे अनुभव द्वारा भी नहीं जाना जा सकता। हम उसका वर्णन नहीं कर सकते, परंतु उसे जान ज़रूर सकते हैं। गुरु साहिब वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

तूं अकथ किउ कथिआ जाहे॥ गुर सबद मारण मन माहे समाहे॥
तेरे गुण अनेक कीमत नह पाहे॥[39]

हे प्रभु! तुम अकथ हो। तुम्हारे अनंत गुणों का वर्णन कर सकना असंभव है, परंतु गुरु के शब्द द्वारा मन को वश में करके तुझमें समाया जा सकता है। गुरु नानक साहिब कहते हैं:

अकथौ कथउ किआ मै जोर॥ भगति करी कराइह मोर॥[40]

आप कहते हैं: मुझमें उस अकथ का वर्णन करने की शक्ति नहीं। उसकी दया हो तो मैं उसकी भक्ति में लग जाऊँ।

गुरु साहिब प्रश्न करते हैं: उस अगम-अथाह की थाह कैसे पायी जाये? उसके साथ मिलाप कैसे किया जाये? आप स्वयं ही उत्तर देते हैं: भाई! उस अगम-अगोचर प्रभु को पाने का साधन अवश्य है। वह साधन है तन, मन, धन गुरु को अर्पण कर देना। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि गुरु से मिलाप प्रभु की कृपा द्वारा होगा, यदि सौभाग्य से गुरु की शरण प्राप्त हो जाये तो तन-मन से उसके उपदेश का पालन करो। गुरु की शरण प्राप्त हो जाना काफ़ी नहीं है।

जो भी आध्यात्मिक उन्नति होगी निष्ठापूर्वक गुरु के उपदेश पर चलने से होगी। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

तन संतन का धन संतन का मन संतन का कीआ॥
संत प्रसाद हर नाम धिआइआ सरब कुसल तब थीआ॥
संतन बिन अवर न दाता बीआ॥
जो जो सरण परै साधू की सो पारगरामी कीआ॥[41]

पूरा गुरु अपने लाभ के लिये शिष्य का एक पैसा भी स्वीकार नहीं करता। गुरु को धन अर्पण करने का भाव है कि शिष्य इसको गुरु की अमानत समझकर परमार्थ के कार्य में ख़र्च करे। साध संगत पर धन ख़र्च करना प्रभु का धन्यवाद प्रकट करना है। इससे वृत्ति बदलती है, हृदय में उदारता आती है और परमार्थ की कमाई में सहायता मिलती है।

'तन' गुरु को अर्पण करने का क्या भाव है? गुरु अंगद देव जी, गुरु अमरदास जी और गुरु रामदास जी ने स्वयं सतगुरु की निजी सेवा की और साध संगत की सेवा में भी कोई कमी नहीं छोड़ी। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

अनिक भांत कर सेवा करीऐ॥ जीउ प्रान धन आगै धरीऐ॥
पानी पखा करउ तज अभिमान॥ अनिक बार जाईऐ कुरबान॥[42]

आप दूसरे प्रसंग में कहते हैं:

तिस गुर कउ झूलावउ पाखा॥ महा अगन ते हाथ दे राखा॥
तिस गुर कै ग्रिह ढोवउ पाणी॥ जिस गुर ते अकल गत जाणी॥[43]

आप कहते हैं:

कमावा तिन की कार सरीर पवित होए॥
पखा पाणी पीस बिगसा पैर धोए॥[44]

इस तरह के प्रसंग सेवक को शरीर का मोह त्यागकर नम्रता के भाव से साध संगत की सेवा में लगने की प्रेरणा देते हैं। गुरु साहिबान का वास्तविक

भाव शरीर को सतगुरु की अमानत समझकर इसका सदुपयोग करने की प्रेरणा देना है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

सतिगुर की सेवा चाकरी जे चलह सतिगुर भाए॥
आप गवाए सतिगुरू नो मिलै सहजे रहै समाए॥
नानक तिन्हा नाम न वीसरै सचे मेल मिलाए॥[45]

आप फ़रमाते हैं कि सतगुरु के हुक्म में रहना ही सतगुरु की सच्ची सेवा है और हुक्म में रहने का अर्थ लिव को सदैव नाम के साथ जोड़कर रखना है।

धन अर्पण करना आसान है, तन अर्पण करना धन अर्पण करने से कठिन है, परंतु मन अर्पण करना बहुत कठिन है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

गुर कै ग्रिह सेवक जो रहै॥ गुर की आगिआ मन मह सहै॥
आपस कउ कर कछु न जनावै॥ हर हर नाम रिदै सद धिआवै॥
.....
सेवा करत होए निहकामी॥ तिस कउ होत परापत सुआमी॥
अपनी क्रिपा जिस आप करे॥ नानक सो सेवक गुर की मत ले॥[46]

गुरु की शरण में आये सेवक को चाहिये कि सदा गुरु के हुक्म का पालन करे। वह आपा-भाव त्यागकर लिव नाम के साथ जोड़कर रखे। वह पूरी तरह से मनमत त्याग दे और निष्काम भाव से सतगुरु की सेवा करे। इस तरह से उसका मनुष्य जन्म सफल हो जायेगा और उसे प्रभु प्राप्ति का मनोवाँछित फल मिल जायेगा।

एक बार गुरु अमरदास जी ने सत्तर बार चबूतरे बनवाये और गिरवा दिये। शेष सारी संगत छोड़कर चली गयी, केवल रामदास जी ही बार-बार चबूतरे बनाते और गिराते रहे। जब कुछ लोगों ने आपको कहा कि बार-बार चबूतरे बनाना और गिराना व्यर्थ है तो आपने उत्तर दिया: यदि गुरु साहिब सारी आयु रामदास से चबूतरे बनवाते और गिरवाते रहेंगे, तो रामदास उम्र भर ऐसा ही करता रहेगा। यह है मन को गुरु के हुक्म के अधीन करना। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

मन बेचै सतिगुर कै पास॥ तिस सेवक के कारज रास॥[47]

गुरु रामदास जी का कथन है:

मन की मत तिआगहो हर जन एहा बात कठैनी॥
अनदिन हर हर नाम धिआवहो गुर सतिगुर की मत लैनी॥[48]

मनमत त्यागकर गुरुमत में आना बहुत कठिन है। जीव का उद्धार इसमें है कि मनमत त्यागकर गुरु के उपदेशानुसार लिव नाम के साथ जोड़े।

मन में प्रश्न उत्पन्न होता है कि तन, मन, धन गुरु को सौंपकर उसका हुक्म कैसे मानें? गुरु साहिब उत्तर देते हैं:

हुकम मंनिहो गुरू केरा गावहो सची बाणी॥
कहै नानक सुणहो संतहो कथिहो अकथ कहाणी॥

गुरु का हुक्म मानकर अपनी लिव सच्ची वाणी के साथ जोड़ो। इस तरह तुम्हें प्रभु से मिलाप का अनुभव प्राप्त हो जायेगा। यही अकथ को वर्णन करने का वास्तविक साधन है। गुरु साहिब समझाते हैं:

पूरे गुर की साची बाणी॥ सुख मन अंतर सहज समाणी॥[49]

आँखों से ऊपर तीन सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं। बाईं ओर इड़ा है, दाईं ओर पिंगला है और बीच में सुषुम्ना है। गुरु साहिब कहते हैं कि तुम ध्यान को अंदर एकाग्र और स्थिर करके सुषुम्ना में पहुँचो। वहाँ पहुँचकर तुम्हारी लिव सच्ची वाणी यानी सच्चे नाम के साथ जुड़ जायेगी। सतगुरु के उपदेशानुसार अंदर सच्ची वाणी के साथ जुड़ जाओगे तो वह वाणी तुम्हें सहज अवस्था में ले जायेगी और तुम्हें उस अकथ-अकह सत्य का बोध हो जायेगा।

गुरु नानक साहिब की वाणी है:

सुखमन कै घर राग सुन सुंन मंडल लिव लाए॥
अकथ कथा बीचारीऐ मनसा मनहि समाए॥
उलट कमल अंम्रित भरिआ इह मन कतहु न जाए॥
अजपा जाप न वीसरै आद जुगाद समाए॥[50]

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि वर्तमान अवस्था में मन ऊपर से नीचे और अंदर से बाहर जाने का आदी है। जब मन उलटकर बाहर से अंदर आँखों से ऊपर एकाग्र तथा स्थिर हो जाता है तो हृदय कमल, शब्द यानी नाम के अजपा जाप से भर जाता है। इस तरह, आत्मा उस अनादि परमेश्वर में समा जाती है। यही परमेश्वर अर्थात् शब्द की अकथ कथा का कथन यानी ज्ञान है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

अकथ कथा अंम्रित प्रभ बानी॥ कहो नानक जप जीवे गिआनी॥[51]

ए मन चंचला चतुराई किनै न पाइआ॥
चतुराई न पाइआ किनै तू सुण मंन मेरिआ॥
एह माइआ मोहणी जिन एत भरम भुलाइआ॥
माइआ त मोहणी तिनै कीती जिन ठगउली पाईआ॥
कुरबाण कीता तिसै विटहो जिन मोह मीठा लाइआ॥
कहै नानक मन चंचल चतुराई किनै न पाइआ॥१०॥

ठगउली=ठगमूरी, ठगों की बूटी।

सरलार्थ: हे चंचल मन! तू किसी भी चालाकी या होशियारी से अगम-अगोचर प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकता। मेरे मन! भलीभाँति निश्चय कर ले कि उस प्रभु को बुद्धि या समझदारी से प्राप्त नहीं किया जा सकता। मन को मोह लेनेवाली यह माया भी उस हरि ने पैदा की है और जीवात्मा को इस ठगिनी माया के वश भी उसी ने किया है। बलिहारी जायें उस प्रभु पर जिसने जीवों के अंदर माया का मीठा मोह पैदा किया है। गुरु साहिब कहते हैं: हे चंचल मन! अपनी चतुराई से परमात्मा के साथ मिलाप नहीं किया जा सकता।

❖ ***ए मन चंचला चतुराई किनै न पाइआ॥***
चतुराई न पाइआ किनै तू सुण मंन मेरिआ॥

गुरु साहिब ने पिछली पउड़ी में 'हुकम मंनिहो गुरू केरा गावहो सची बाणी' का उपदेश दिया है। अब समझा रहे हैं कि सतगुरु के हुक्म के अनुसार लिव नाम के साथ जोड़ने के बजाय मन की मर्ज़ी के किसी अन्य साधन द्वारा प्रभु के साथ मिलाप करने का प्रयत्न करोगे तो अपने उद्देश्य में कभी सफल नहीं हो सकोगे। गुरु रामदास जी की वाणी है:

कांइआ नगर इक बालक वसिआ खिन पल थिर न रहाई॥
अनिक उपाव जतन कर थाके बारं बार भरमाई॥
मेरे ठाकुर बालक इकत घर आण॥
सतिगुर मिलै त पूरा पाईऐ भज राम नाम नीसाण॥[52]

शरीररूपी नगरी के अंदर मनरूपी चंचल बालक का निवास है। यह बालक इतना चंचल है कि हज़ार कोशिश करने के बावजूद पल भर के लिये भी अंदर टिककर नहीं बैठता। यह मुँहज़ोर होकर बार-बार संसार के पदार्थों और इंद्रियों के भोगों की ओर दौड़ता है। जब तक प्रभु की कृपा और सतगुरु की सहायता से यह राम-नाम के साथ नहीं जुड़ता, तब तक इसकी चंचलता और भटकन दूर नहीं होती। गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

मन खिन खिन भरम भरम बहु धावै तिल घर नही वासा पाईऐ॥
गुर अंकस सबद दारू सिर धारिओ घर मंदर आण वसाईऐ॥[53]

मनरूपी अस्थिर और मुँहज़ोर हाथी को वश में करने का एकमात्र उपाय है कि इसके सिर पर सतगुरु के उपदेश का अंकुश रखा जाये और अंदर आँखों से ऊपर टिकाकर शब्द का अमृत पीने को दिया जाये।

एह माइआ मोहणी जिन एत भरम भुलाइआ॥
माइआ त मोहणी तिनै कीती जिन ठगउली पाईआ॥

माया द्वारा भ्रमित अज्ञानी जीव दुनिया की शक्लों-पदार्थों के मोह में फँस गया है। यह झूठे संसार को सत्य समझने के भ्रम का शिकार हो गया है। यह इस हद तक मायामय जगत् और इसकी शक्लों और पदार्थों के मोह में फँस गया

है कि इसका प्रभु और उसके नाम की ओर ध्यान ही नहीं जाता। ठगों के पास एक बूटी होती है। वे उस बूटी की सुगंध से राहगीरों को बेहोश करके उन्हें लूट लेते हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि माया और उसका आकर्षण स्वयं प्रभु ने पैदा किया है जिस कारण सभी जीव ठगे जा रहे हैं।

कुरबाण कीता तिसै विटहो जिन मोह मीठा लाइआ॥– कुछ विद्वानों ने इस पंक्ति का यह अर्थ किया है कि बलिहारी जायें उस कर्ता पर जो हृदय में अपना मीठा प्रेम पैदा करता है, क्योंकि यह प्रेम ही जीव को माया के मोह से मुक्त करके परमेश्वर से मिलानेवाला असली साधन है। गुरु अंगद देव जी का कथन है:

मन रे किउ छूटह बिन पिआर॥
गुरमुख अंतर रव रहिआ बखसे भगति भंडार॥[54]

आप कहते हैं: परमेश्वर के प्रेम के बिना दूसरे किसी साधन द्वारा रचना के मोह से छुटकारा पा सकना असंभव है। वह प्रभु गुरुमुखों के अंदर प्रकट है और उनको अपनी कृपा के भंडार से निहाल कर रहा है। संत नामदेव जी का कथन है: '*नामे प्रीत नाराइण लागी॥ सहज सुभाए भइओ बैरागी॥*'[55] जब हृदय में हरि का प्रेम पैदा हो गया तो मन सहज ही रचना के मोह से उपराम हो गया।

कुछ विद्वानों ने इस तुक को इससे ऊपर की पंक्ति से जोड़ा है जिस में यह कहा गया है कि परमेश्वर ने माया की मीठी ठगउली या ठगमूरी ख़ुद पैदा की है। इस आधार पर वे इस पंक्ति का यह अर्थ करते हैं कि बलिहारी जायें उस कर्ता पर जिस ने संसार में माया और मोह का मीठा चोग़ा बिखेरा हुआ है। उन विद्वानों ने अपने विचारों को गुरु नानक साहिब की वाणी के इस प्रसंग पर आधारित किया है:

तुध आपे जगत उपाए कै तुध आपे धंधै लाइआ॥
मोह ठगउली पाए कै तुध आपहो जगत खुआइआ॥
तिसना अंदर अगन है नह तिपतै भुखा तिहाइआ॥
सहसा इह संसार है मर जंमै आइआ जाइआ॥

बिन सतिगुर मोह न तुटई सभ थके करम कमाइआ॥
गुरमती नाम धिआईऐ सुख रजा जा तुध भाइआ॥
कुल उधारे आपणा धंन जणेदी माइआ॥
सोभा सुरत सुहावणी जिन हर सेती चित लाइआ॥[56]

गुरु साहिब विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं कि परमेश्वर ने स्वयं संसार में मोह की मीठी ठगोरी का कौतुक रचा हुआ है। लोग बुरी तरह माया मोह और आशा-तृष्णा की अग्नि में जल रहे हैं। इस विनाशकारी माया जाल से केवल उनका छुटकारा होता जो सतगुरु के उपदेशानुसार नाम के साथ लिव जोड़ लेते हैं। उनके हृदय में माया के मोह के बजाय परमेश्वर का प्रेम बस जाता है। उनकी वृत्ति प्रशंसनीय है। उनका मनुष्य जन्म धन्य है। उनके माता-पिता धन्य हैं। वे ख़ुद भी भवसागर से पार हो जाते हैं और अपने कुल के उद्धार में भी सहायक सिद्ध होते हैं।

'अनंद' की अगली पउड़ी में भी इस विचार की पुष्टि होती है जिस में गुरु साहिब सतगुरु के उपदेशानुसार झूठी माया के मोह का त्याग करके सच्चे परमेश्वर के साथ प्रेम करने का उपदेश देते हैं।

गुरु साहिब द्वारा मोह के मीठे प्रसार को अकालपुरुष का आश्चर्य-भरा कौतुक कहना हैरानी की बात नहीं, क्योंकि इसके बिना रचना का कार्य-व्यवहार चल सकना असंभव है। जीवन के आरंभ से अंत तक हर क़दम पर मोह का मीठा या लुभावना प्रसार दिखायी देता है। बिना मोह के माता बच्चे को जन्म नहीं दे सकती। मोह-ममता में जकड़े माता-पिता संतान के लिये क्या-क्या नहीं करते? पुत्री-पुत्र, माता-पिता, सगे-संबंधियों का मोह; ज़मीन जायदाद, पद प्राप्ति का मोह; कुल, जाति, संप्रदाय, क़ौम, धर्म, राष्ट्र के मोह में जकड़ा इनसान इनके लिये क्या कुछ नहीं करता? जिसके प्रति मोह होता है, जीव उसके लिये जान देने को तैयार हो जाता है और जिसके साथ मोह नहीं होता, उसकी जान लेने को उतारू हो जाता है। भाव यह है कि प्रभु की रज़ा से माया द्वारा बिखेरा गया मोह का मीठा चोगा ही जीव को रचना के जाल में बाँधकर रखने का मूल कारण है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

एऊ जीअ बहुत ग्रभ वासे॥ मोह मगन मीठ जोन फासे॥
इन माइआ त्रै गुण बस कीने॥ आपन मोह घटे घट दीने॥[57]

मोह की मिठास में मस्त जीव अनेक प्रकार के कर्म करते हैं जिस के कारण वे अनेक योनियों में भटकते रहते हैं। मोह की यह विषभरी मिठास हर हृदय में समायी हुई है।

कहै नानक मन चंचल चतुराई किनै न पाइआ॥– गुरु साहिब सावधान करते हैं: हे मन! तू इस चतुराई का शिकार न हो कि तू माया के मोह और परमेश्वर के प्रेम का धर्म एक साथ निभा लेगा। रचना के मोह को प्राथमिकता दी जाये या परमेश्वर के प्रेम को? जीव की इस उलझन का समाधान गुरु साहिब अगली पउड़ी में करते हैं।

ए मन पिआरिआ तू सदा सच समाले॥
एह कुटंब तू जि देखदा चलै नाही तैरै नाले॥
साथ तैरै चलै नाही तिस नाल किउ चित लाईऐ॥
ऐसा कंम मूले न कीचै जित अंत पछोताईऐ॥
सतिगुरू का उपदेस सुण तू होवै तैरै नाले॥
कहै नानक मन पिआरे तू सदा सच समाले॥११॥

सरलार्थ: हे प्यारे मन! तू सदा प्रभुरूपी सत्य को सँभालने का उद्यम कर यानी तू रचना का मोह त्यागकर प्रभु के साथ प्रेम कर। जो परिवार तू देख रहा है, यह अंत समय तेरे साथ नहीं चलेगा। जब इसने चलते समय तेरे साथ नहीं चलना तो इसमें मन (चित्त) क्यों लगाता है, इससे मोह क्यों करता है? ऐसा काम कभी नहीं करना चाहिये जिस कारण अंत में पछताना पड़े। तू सतगुरु के उपदेशानुसार सदा प्रभुरूपी सत्य से जुड़ा रह, केवल यही धन अंत समय तेरे साथ जा सकता है। गुरु साहिब कहते हैं: हे प्यारे मन! तू सदा प्रभुरूपी सत्य के साथ जुड़ा रह।

❖ ***ऐ मन पिआरिआ तू सदा सच समाले॥***
एह कुटंब तू जि देखदा चलै नाही तैरै नाले॥

गुरु साहिब समझाते हैं: मेरे प्यारे! प्रभु सच्चा है, वह अविनाशी है। तू प्रभुरूपी सत्य के बजाय झूठे, मायामय संसार तथा इसकी शक्लों और पदार्थों के मोह में पड़ने की अज्ञानता से बच।

साथ तैरै चलै नाही तिस नाल किउ चित लाईऐ॥
ऐसा कंम मूले न कीचै जित अंत पछोताईऐ॥

गुरु साहिब प्रश्न करते हैं: भले मानस! तू उस चीज़ के मोह में क्यों फँसता है जो यहाँ से चलते समय तेरे साथ नहीं जा सकती? ऐसा काम कदापि नहीं करना चाहिये जिस कारण अंत में पछताना पड़े।

गुरु नानक साहिब की वाणी है:

जित सेविऐ सुख पाईऐ सो साहिब सदा सम्हालीऐ॥
जित कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ॥
मंदा मूल न कीचई दे लंमी नदर निहालीऐ॥
जिउ साहिब नाल न हारीऐ तेवेहा पासा ढालीऐ॥
किछ लाहे उपर घालीऐ॥[58]

आप फ़रमाते हैं कि जो भी काम करना है, अंतिम समय को प्रधानता देकर करना है। ऐसा खेल नहीं खेलना चाहिये जिससे साहिब के दरबार में जीवन की बाज़ी हार जायें। हमें प्रभु की भक्ति करनी चाहिये, क्योंकि यही सच्चे सुख का वास्तविक साधन है।

गुरु तेग़ बहादुर जी सांसारिक संबंधों की वास्तविकता बयान करते हुए कहते हैं:

धन दारा संपत सगल जिन अपुनी कर मान॥
इन मै कछु संगी नही नानक साची जान॥[59]

संग सखा सभ तज गए कोऊ न निबहिओ साथ॥
कहो नानक इह बिपत मै टेक एक रघुनाथ॥[60]

अंत समय कौन साथ निभाता है:

नाम रहिओ साधू रहिओ रहिओ गुर गोबिंद॥
कहो नानक इह जगत मै किन जपिओ गुर मंत॥[61]

गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

नानक कचड़िआ सिउ तोड़ ढूढ सजण संत पकिआ॥
ओए जीवंदे विछुड़ह ओए मुइआ न जाही छोड़॥[62]

सतिगुरू का उपदेस सुण तू होवै तैरै नाले॥
कहै नानक मन पिआरे तू सदा सच समाले॥

मेरे प्यारे! तू सतगुरु के उपदेशानुसार प्रभु यानी नामरूपी अविनाशी सत्य के साथ जुड़ जा, जो सदा तेरे साथ रहे। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

सिमरउ सिमर सिमर सुख पावउ सास सास समाले॥
इह लोक परलोक संग सहाई जत कत मोह रखवाले॥
गुर का बचन बसै जीअ नाले॥
जल नही डूबै तसकर नही लेवै भाह न साकै जाले॥
निरधन कउ धन अंधुले कउ टिक मात दूध जैसे बाले॥
सागर मह बोहिथ पाइओ हर नानक करी क्रिपा किरपाले॥[63]

अगम अगोचरा तेरा अंत न पाइआ॥
अंतो न पाइआ किनै तेरा आपणा आप तू जाणहे॥
जीअ जंत सभ खेल तेरा किआ को आख वखाणए॥
आखह त वेखह सभ तूहै जिन जगत उपाइआ॥
कहै नानक तू सदा अगंम है तेरा अंत न पाइआ॥१२॥

सरलार्थ: हे प्रभु! तू मन-बुद्धि की पहुँच से परे है, इंद्रियों द्वारा भी तेरा ज्ञान नहीं हो सकता, तेरा अंत नहीं पाया जा सकता। हे प्रभु! किसी ने कभी तेरा अंत नहीं पाया। तू कैसा है? इसे तेरे सिवाय अन्य कोई **नहीं जानता।**

यह रचना और इसके जीव-जंतु सब तेरा खेल हैं। किसमें यह सामर्थ्य है कि तेरे या तेरे खेल के बारे में कुछ कह सके? हे जगत् को पैदा करनेवाले जगदीश! कहनेवाला भी तू है, देखनेवाला भी तू है, जो कुछ है तू ही तू है, तेरे बिना और कुछ नहीं है। गुरु साहिब कहते हैं: हे प्रभु! तू सदा से अगम है। न कभी कोई तेरा अंत पा सका है और न ही पा सकेगा।

❖ गुरु साहिब कहते हैं: हे प्रभु! तेरा अंत पा सकना असंभव है। तेरी महिमा बयान कर पाना असंभव है। तू अपनी महिमा स्वयं ही जानता है। तू सर्वशक्तिमान् कर्ता है। यह संसार और इसमें रह रहे सब जीव जंतु तेरा खेल हैं। सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि इतनी बड़ी और रंग-बिरंगी सृष्टि उत्पन्न करके तू उसके कण-कण में समा गया है। जो कोई देखता है, तेरी शक्ति से देखता है। जो कोई सुनता है, तेरी शक्ति से सुनता है। बाहर से देखने पर इस सृष्टि में अनंत प्रकार के जीव दिखायी देते हैं, परंतु वास्तव में उनमें स्वयं तू ही सक्रिय है। मेरे साहिब! नाटक भी तू है, खेलनेवाला भी तू है। धन्य है तू और धन्य है तेरी आश्चर्यजनक लीला! गुरु नानक साहिब की वाणी है:

वडे मेरे साहिबा गहर गंभीरा गुणी गहीरा॥
कोए न जाणै तेरा केता केवड चीरा॥
सभ सुरती मिल सुरत कमाई॥ सभ कीमत मिल कीमत पाई॥
गिआनी धिआनी गुर गुरहाई॥ कहण न जाई तेरी तिल वडिआई॥[64]

हे मेरे बड़े से बड़े साहिब! तेरा अंत पाना असंभव है। तू गहरे से गहरा है, गंभीर से गंभीर है। तू गुणों का अथाह भंडार है। साधारण जीव ही नहीं, बड़े से बड़े ज्ञानी और गुरु-पीर भी तेरी महिमा बयान नहीं कर सकते। इसी भाव को आपने एक अन्य स्थान पर भी प्रकट किया है:

आखण वाला किआ बेचारा॥ सिफती भरे तेरे भंडारा॥[65]

गुरु साहिबान अनेक प्रकार से कुल मालिक की महिमा की ओर हमारा ध्यान खींचते हैं। आप हमारे अंदर उसका प्रेम और विश्वास पैदा करना चाहते हैं ताकि हम झूठी दुनिया के झूठे मोह से मुक्त होकर, सच्चे प्रभु के सच्चे प्रेम में परिपक्व हो सकें।

सुर नर मुनि जन अंम्रित खोजदे सो अंम्रित गुर ते पाइआ॥
पाइआ अंम्रित गुर क्रिपा कीनी सचा मन वसाइआ॥
जीअ जंत सभ तुध उपाए इक वेख परसण आइआ॥
लब लोभ अहंकार चूका सतिगुरू भला भाइआ॥
कहै नानक जिस नो आप तुठा तिन अंम्रित गुर ते पाइआ॥१३॥

परसण=स्पर्श करना; **लब**=लालच; **तुठा**=प्रसन्न होना।

सरलार्थ: देवता, मनुष्य और ऋषि-मुनि जिस अमृत को ढूँढ़ रहे हैं, वह अमृत गुरु से प्राप्त हुआ है। गुरु की कृपा से सच्चा नाम मन में बस गया है। हे प्रभु! सब जीव-जंतु तेरे ही पैदा किये हुए हैं, परंतु इनमें से कोई विरला जीव ही अंतर में सतगुरु के नूरी स्वरूप के दर्शन पाता है। इस प्रकार जो शिष्य सतगुरु की शरण में आ जाता है उसके लोभ, मोह, अहंकार का नाश हो जाता है और उसे सतगुरु प्यारा लगने लगता है। गुरु साहिब कहते हैं: जिस पर प्रभु प्रसन्न होता है, उसे ही गुरु से अमृत की दात प्राप्त होती है।

❖ ***सुर नर मुनि जन अंम्रित खोजदे सो अंम्रित गुर ते पाइआ॥***
पाइआ अंम्रित गुर क्रिपा कीनी सचा मन वसाइआ॥

गुरु साहिब प्रभु के नामरूपी अमृत का गुणगान करते हुए कहते हैं कि साधारण जीव का तो क्या कहना, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और देवी-देवता भी अपने बल-बुद्धि द्वारा उस अमृत को खोज रहे हैं, लेकिन उस तक नहीं पहुँच सकते। वह अमृत जिसे भी मिलता है, सतगुरु की कृपा द्वारा मिलता है। मन में उस सच्चे प्रभु और उसके सच्चे नाम से प्रेम भी सतगुरु की कृपा द्वारा ही पैदा होता है।

गुरु अंगद देव जी की वाणी है:

जिन वडिआई तेरे नाम की ते रते मन माहि॥
नानक अंम्रित एक है दूजा अंम्रित नाहि॥
नानक अंम्रित मनै माहि पाईऐ गुर परसाद॥
तिन्ही पीता रंग सिउ जिन्ह कउ लिखिआ आद॥[66]

इसी प्रकार गुरु अमरदास जी का कथन है:

गुर का सबद अंम्रित है जित पीतै तिख जाए॥
इह मन साचा सच रता सचे रहिआ समाए॥[67]

मन की हर प्रकार की भूख को शांत करनेवाला और सच्चे प्रभु के साथ मिलाप का सौभाग्य प्रदान करनेवाला अमृत, प्रभु का शब्द यानी नाम है। आप कहते हैं:

अंदर अंम्रित भरपूर है चाखिआ साद जापै॥
जिन चाखिआ से निरभउ भए से हर रस ध्रापै॥
हर किरपा धार पीआइआ फिर काल न विआपै॥[68]

मन में प्रश्न उत्पन्न होता है कि शरीर में वह अमृत कहाँ है और मिलता कैसे है? गुरु रामदास जी की वाणी है:

नउ दरवाज नवे दर फीके रस अंम्रित दसवे चुईजै॥[69]

शरीर के नौ द्वारों – दो आँखों, दो कानों, दो नासिकाओं, मुँह और मल-मूत्र के दो स्थानों द्वारा मिलनेवाले स्वाद कच्चे, फीके और झूठे हैं। सच्चे रस से भरपूर अमृत आँखों से ऊपर दसवें द्वार में बरस रहा है। आप कहते हैं:

अम्रिंत रस सतिगुरू चुआइआ॥ दसवै दुआर प्रगट होए आइआ॥
तह अनहद सबद वजह धुन बाणी सहजे सहज समाई हे॥[70]

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि अनहद शब्दरूपी वाणी की ध्वनि दसवें द्वार में बज रही है। सतगुरु की दया से ध्यान दसवें द्वार में एकाग्र और स्थिर करके वहाँ बरस रहा नामरूपी अमृत पी लिया जाये तो आवागमन से छुटकारा मिल जाता है और सहज सुख की प्राप्ति हो जाती है।

जीअ जंत सभ तुध उपाए इक वेख परसण आइआ॥
लब लोभ अहंकार चूका सतिगुरू भला भाइआ॥
कहै नानक जिस नो आप तुठा तिन अंम्रित गुर ते पाइआ॥

गुरु साहिब कहते हैं: हे प्रभु! संसार के सब जीव तूने स्वयं पैदा किये हैं, परंतु ऐसे भाग्यशाली जीव विरले हैं जो सतगुरु की शरण प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। जिन भाग्यशाली जीवों को सतगुरु अच्छा लगता है भाव प्यारा लगता है, उन्हें क्या लाभ होता है? अंदर से उन्हें नाम का अमृत प्राप्त होता है जिसके फलस्वरूप उन्हें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकाररूपी विकारों से मुक्ति मिल जाती है। उनका मन निर्मल हो जाता है और उनकी कर्मों, संस्कारों, इच्छाओं, तृष्णाओं की मैल साफ़ हो जाती हैं। ऐसे भाग्यशाली जीव पूर्ण रूप से निर्मल होकर प्रभु के साथ मिलाप करने के योग्य बन जाते हैं।

भगता की चाल निराली॥
चाला निराली भगताह केरी बिखम मारग चलणा॥
लब लोभ अहंकार तज त्रिसना बहुत नाही बोलणा॥
खंनिअहो तिखी वालहो निकी एत मारग जाणा॥
गुर परसादी जिनी आप तजिआ हर वासना समाणी॥
कहै नानक चाल भगता जुगहो जुग निराली॥१४॥

चाल=रहनी; **निराली**=भिन्न, न्यारी; **बिखम**=कठिन; **खंनिअहो**=खांडा, तलवार; **निकी**=सूक्ष्म, बारीक़; **वासना**=चाह, प्रेम।

सरलार्थ: प्रभु के भक्तों की रहनी अलग तरह की होती है। प्रभु के भक्तों को बहुत कठिन मार्ग पर चलना पड़ता है। वे लोभ, मोह, अहंकार और तृष्णा को त्याग देते हैं। वे अधिक बोलने और वाद-विवाद में पड़ना पसंद नहीं करते। प्रभु के भक्तों को तलवार की धार से तीखे और बाल से भी सूक्ष्म रास्ते पर चलना पड़ता है। गुरु की कृपा से जो आपा-भाव, यानी ख़ुदी का त्याग कर देते हैं, उनके अंदर प्रभु का प्रेम समा जाता है। गुरु साहिब कहते हैं: युगों-युगों से प्रभु के भक्तों की रहनी न्यारी रही है और न्यारी रहेगी।

❖ ***भगता की चाल निराली॥***
चाला निराली भगताह केरी बिखम मारग चलणा॥
लब लोभ अहंकार तज त्रिसना बहुत नाही बोलणा॥

गुरु साहिब समझाते हैं कि प्रभु के भक्तों की सोच और रहनी आम सांसारिक लोगों से बिलकुल अलग होती है। सांसारिक लोगों के मन में दुनियावी शक्लों-पदार्थों की प्रबल लालसा होती है जिसके अधीन वे बार-बार विषय-विकारों की तरफ़ दौड़ते हैं। प्रभु के भक्त मुक्ति के कठिन रास्ते पर चलते हैं। वे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकाररूपी वासनाओं से ऊपर उठ जाते हैं। प्रभु के भक्त अपनी बड़ाई की डींगें नहीं हाँकते। उनके मन में जगत् की तृष्णा के बजाय प्रभु का प्रेम समा जाता है। उनके अंदर संयम, संतोष और नम्रता का निवास हो जाता है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

सेव कीती संतोखीईं जिन्ही सचो सच धिआइआ॥
ओन्ही मंदै पैर न रखिओ कर सुक्रित धरम कमाइआ॥
ओन्ही दुनीआ तोड़े बंधना अंन पाणी थोड़ा खाइआ॥
तूं बखसीसी अगला नित देवह चड़ह सवाइआ॥
वडिआई वडा पाइआ॥[71]

प्रभु के भक्त मन में सब्र-संतोष धारण करके भक्ति करते हैं। वे विषय-विकारों से दूर रहते हैं। वे अधर्म के नहीं बल्कि धर्म के मार्ग पर चलते हैं। थोड़ा खाना, थोड़ा सोना और थोड़ा बोलना उनका स्वभाव बन जाता है। प्रभु की दया से वे सदा प्रभु की भक्ति के रंग में रँगे रहते हैं।

खंनिअहो तिखी वालहो निकी एत मारग जाणा॥– उनका मार्ग तलवार की धार से भी तीखा और बाल से भी सूक्ष्म होता है। उस कठिन मार्ग पर चलना आसान कार्य नहीं। बाबा फ़रीद की वाणी है:

वाट हमारी खरी उडीणी॥ खंनिअहो तिखी बहुत पिईणी॥
उस ऊपर है मारग मेरा॥ सेख फरीदा पंथ सम्हार सवेरा॥[72]

ख़ुदा की इबादत कठिन मार्ग है। यह तलवार की धार से भी तीखा और बाल से भी बारीक़ रास्ता है। इस मार्ग पर पूरी सावधानी के साथ जल्दी चलने का प्रयत्न करना चाहिये।

गुर परसादी जिनी आप तजिआ हर वासना समाणी॥
कहै नानक चाल भगता जुगहो जुग निराली॥

गुरु साहिब कहते हैं कि सतगुरु की कृपा से जो भक्त आपा-भाव त्याग देते हैं और अहंकार का नाश कर लेते हैं, उनके अंदर प्रभु का सच्चा प्रेम समा जाता है। उनके हृदय में केवल प्रभु के दर्शनों की इच्छा बाक़ी रह जाती है। उनका ध्यान संसार की ओर से ही नहीं बल्कि शरीर और इसके भोगों की ओर से भी सदा के लिये हट जाता है। प्रभु के ऐसे भक्तों की वृत्ति माया के पुजारियों से अलग होती है तथा उनकी रहनी भी साधारण सांसारिक लोगों से अलग होती है।

प्रभु के भक्तों का आदर्श प्रभु का मिलाप है। गुरु साहिब सावधान करते हैं कि केवल आदर्श या उद्देश्य ठीक होना ही काफ़ी नहीं, इसके साथ रहनी, करनी और उद्यम की दिशा भी ठीक होनी चाहिये।

जिउ तू चलाइहे तिव चलह सुआमी होर किआ जाणा गुण तेरे॥
जिव तू चलाइहे तिवै चलह जिना मारग पावहे॥
कर किरपा जिन नाम लाइहे से हर हर सदा धिआवहे॥
जिस नो कथा सुणाइहे आपणी से गुरदुआरै सुख पावहे॥
कहै नानक सचे साहिब जिउ भावै तिवै चलावहे॥१५॥

सरलार्थ: हे स्वामी! मैं तेरे और गुण क्या जान सकता हूँ, बस इतना कहा जा सकता है कि जैसे तू चलाता है, वैसे ही सब जीव चलते हैं। तू जिन्हें जिस रास्ते पर चलाता है, वे उसी रास्ते पर चलते हैं। तू कृपा करके जिन्हें अपने नाम के साथ जोड़ लेता है वे फिर हर ओर से

अपना ख़्याल हटाकर सदा तुझमें तथा तेरे नाम में लवलीन रहते हैं। हे प्रभु! जिन्हें तू अपना ज्ञान देता है, वही सतगुरु की शरण प्राप्त करके सच्चा सुख प्राप्त करते हैं। हे सच्चे साहिब! तुझे जैसे अच्छा लगता है, तू उसी तरह से जीवों को चलाता है।

जिउ तू चलाइहे तिव चलह सुआमी होर किआ जाणा गुण तेरे॥
जिव तू चलाइहे तिवै चलह जिना मारग पावहे॥

गुरु साहिब फ़रमाते हैं: हे मेरे मालिक! मुझ में तेरे गुणों को बयान कर सकने का सामर्थ्य नहीं है। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि जगत् में तेरे पैदा किये हुए जीव, उसी तरह से चलते हैं जिस तरह से तू उन्हें चलाता है। जो माया के मोह के शिकार हैं और बहिर्मुखी भक्ति के रास्ते पर भटकते फिरते हैं, वे भी तेरी रज़ा के अनुसार ही ऐसा कर रहे हैं। जिन्हें तू स्वयं अपने मिलाप के सच्चे मार्ग पर डाल देता है, वे उस मार्ग पर चलना शुरू कर देते हैं। इस संदर्भ में गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

मारग प्रभ का हर कीआ संतन संग जाता॥[73]

मारग प्रभ को संत बताइओ द्रिड़ी नानक दास भगति हर जसूआ॥[74]

प्रभु प्राप्ति का मार्ग प्रभु द्वारा बनाया हुआ है। इस मार्ग पर वही चलता है जिसे प्रभु स्वयं चलाता है। जो कोई इस मार्ग पर चलता है, संत-महात्माओं की दया और सहायता से चलता है। पूर्ण संत के बिना किसी को इस मार्ग का ज्ञान नहीं होता और न ही कोई अपने बल से इस मार्ग पर चल सकता है।

कर किरपा जिन नाम लाइहे से हर हर सदा धिआवहे॥
जिस नो कथा सुणाइहे आपणी सि गुरदुआरै सुख पावहे॥
कहै नानक सचे साहिब जिउ भावै तिवै चलावहे॥

जो गुरु के उपदेशानुसार नाम मार्ग पर चलना शुरू कर देता है, वह आनंदरूप प्रभु के साथ मिलकर आनंदरूप हो जाता है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

नावै जेवड होर धन नाही कोए॥ जिस नो बखसे साचा सोए॥[75]

सभ नावै नो लोचदी जिस क्रिपा करे सो पाए॥
बिन नावै सभ दुख है सुख तिस जिस मंन वसाए॥[76]

इस जग मह नाम अलभ है गुरमुख वसै मन आए॥[77]

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

सुख निधान नाम प्रभ तुमरा एह अबिनासी मंत्र लीओ॥
कर किरपा मोहे सतिगुर दीना ताप संताप मेरा बैर गीओ॥[78]

आप फ़रमाते हैं:

अंतर अलख न जाई लखिआ॥ नाम रतन लै गुझा रखिआ॥
अगम अगोचर सभ ते ऊचा गुर कै सबद लखावणिआ॥
हउ वारी जीउ वारी कल मह नाम सुणावणिआ॥[79]

आप 'प्रभु' और 'नाम' पद को समान अर्थों में प्रयोग कर रहे हैं। आप कहते हैं कि प्रभु यानी नामरूपी अमूल्य हीरा अंदर ही है, पर वह गुप्त है। वह सतगुरु की दया से प्राप्त होता है।

एह सोहिला सबद सुहावा॥
सबदो सुहावा सदा सोहिला सतिगुरू सुणाइआ॥
एह तिन कै मंन वसिआ जिन धुरहो लिखिआ आइआ॥
इक फिरह घनेरे करह गला गली किनै न पाइआ॥
कहै नानक सबद सोहिला सतिगुरू सुणाइआ॥१६॥

सोहिला=सुंदर और आनंदमय गीत; **सुहावा**=सुहावना, सुखदायी; **घनेरे**=भरपूर।

सरलार्थ: प्रभु का शब्द सुंदर गीत है। यह प्रभु की स्तुति का अनादि सुहावना गीत है जो सतगुरु ने सुनाया है। शब्दरूपी यह सुंदर गीत,

केवल उनके मन में बसता है जिनके भाग्य में प्रभु ने धुर से लिखा होता है। अनेक लोग जगह-जगह पर भटक रहे हैं और प्रभु की महिमा या भक्ति के बारे में अनेक प्रकार की बातें करते हैं, पर शब्दरूपी यह सुंदर सोहिला बातों से प्राप्त नहीं होता। शब्दरूपी सोहिला केवल वही सुनते हैं जिन्हें सतगुरु दया करके सुनाता है।

❖ ***एह सोहिला सबद सुहावा॥***
सबदो सुहावा सदा सोहिला सतिगुरू सुणाइआ॥

शब्द का सोहिला हर जीव के अंदर है। वर्तमान अवस्था में जीव का ध्यान बाहर फैला हुआ है। सतगुरु जीव को अंतर में ध्यान स्थिर करने और लिव को शब्द के सोहिले के साथ जोड़ने की युक्ति समझा देते हैं। इस तरह वह गुप्त सोहिला प्रकट हो जाता है जिससे हृदय में अपार आनंद भर जाता है।

एह तिन कै मंन वसिआ जिन धुरहो लिखिआ आइआ॥– शब्द का सुखदायी सोहिला केवल उनके हृदय में प्रकट होता है जिनके भाग्य में उस दयालु दाता ने धुर से लिखा होता है। गुरु साहिब ने इस भाव को पाँचवी पउड़ी में भी प्रकट किया है:

धुर करम पाइआ तुध जिन कउ से नाम हर कै लागे॥
कहै नानक तह सुख होआ तित घर अनहद वाजे॥

इक फिरह घनेरे करह गला गली किनै न पाइआ॥– गुरु साहिब कहते हैं कि अनगिनत लोग ग्रंथों और शास्त्रों से पढ़ी-सुनी बातों के आधार पर शब्द यानी नाम के बारे में अनेक प्रकार की कथा-वार्ता सुनाते हैं पर उन्हें उस अगम शब्द के बारे में कोई निजी अनुभव नहीं होता। वे स्वयं अंदर से शब्द का दिव्य संगीत सुने बिना ही बढ़-चढ़कर बातें करते रहते हैं।

कहै नानक सबद सोहिला सतिगुरू सुणाइआ॥– शब्दरूपी सोहिले की समझ सतगुरु से प्राप्त होती है। गुरु अमरदास जी ने वाणी के एक अन्य प्रसंग में यही भाव इस प्रकार प्रकट किया है:

गुर सबदे राता सहजे माता नाम मन वसाए॥
नानक तिन घर सद ही सोहिला जि सतिगुर सेव समाए॥[80]

पवित होए से जना जिनी हर धिआइआ॥
हर धिआइआ पवित होए गुरमुख जिनी धिआइआ॥
पवित माता पिता कुटंब सहित सिउ पवित संगत सबाईआ॥
कहदे पवित सुणदे पवित से पवित जिनी मंन वसाइआ॥
कहै नानक से पवित जिनी गुरमुख हर हर धिआइआ॥१७॥

सरलार्थ: जो हरि भक्त हरि का ध्यान करते हैं, वे पवित्र हो जाते हैं। जो गुरुमुख के उपदेशानुसार हरि में ध्यान लगाते हैं, वे निर्मल होकर हरि में लवलीन हो जाते हैं। वे न केवल स्वयं निर्मल होते हैं बल्कि उनके माता-पिता, सगे-संबंधी और उनकी संगति करनेवाले अनेक लोग भी उनकी तरह सतगुरु के उपदेश से जुड़कर पवित्र हो जाते हैं। जो गुरुमुख शब्दरूपी सोहिला भाव मंगलमय गीत सुनते हैं, वे भी पवित्र हैं, जो उस सोहिले को सुनकर उसका संदेश देते हैं, वे भी पवित्र हैं। जो कोई भी उस सोहिले को मन में बसा लेता है वह निर्मल हो जाता है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं: वे लोग अवश्य पवित्र हो जाते हैं जो गुरुमुखों के उपदेशानुसार प्रभु और उसके नाम में लीन हो जाते हैं।

❖ ***पवित होए से जना जिनी हर धिआइआ॥***
हर धिआइआ पवित होए गुरमुख जिनी धिआइआ॥

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि सतगुरु की कृपा से हरि की पूजा-भक्ति करनेवाले जीव धन्य हैं। सतगुरु की समझायी युक्ति के अनुसार शब्द के साथ लिव जोड़नेवाले साधकों की आत्मा पूरी तरह से निर्मल हो जाती है। ***पवित माता पिता कुटंब सहित सिउ पवित संगत सबाईआ॥***– ऐसे भाग्यशाली प्रभु भक्तों के माता-पिता धन्य हैं। उनके मित्र, संबंधी और उनसे प्रेरणा लेकर सच्ची प्रभु भक्ति में लगनेवाले संगी-साथी भी धन्य हैं।

कहदे पवित सुणदे पवित से पवित जिनी मंन वसाइआ॥
कहै नानक से पवित जिनी गुरमुख हर हर धिआइआ॥

गुरु साहिब कहते हैं कि सतगुरु की समझायी युक्ति के अनुसार शब्द को मन में बसानेवाले और शब्द की महिमा बतानेवाले गुरुमुख भी निर्मल हैं। उनसे शब्द की महिमा सुनकर शब्द के अभ्यास की ओर प्रेरित होनेवाले जिज्ञासु भी शब्द के अभ्यास द्वारा निर्मल हो जाते हैं।

गुरु साहिब ने उपर्युक्त भाव इस तरह से प्रकट किया है:

तूं आप निरमल तेरे जन है निरमल गुर कै सबद वीचारे॥
नानक तिन कै सद बलिहारै राम नाम उर धारे॥[81]

सबदे मन तन निरमल होआ हर वसिआ मन आई॥
सबद गुर दाता जित मन राता हर सिउ रहिआ समाई॥[82]

करमी सहज न ऊपजै विण सहजै सहसा न जाए॥
नह जाए सहसा कितै संजम रहे करम कमाए॥
सहसै जीउ मलीण है कित संजम धोता जाए॥
मंन धोवहो सबद लागहो हर सिउ रहहो चित लाए॥
कहै नानक गुर परसादी सहज उपजै इह सहसा इव जाए॥१८॥

सहज=दुःख-सुख के द्वैत से ऊपर उठकर सदा एक-रस रहनेवाली अवस्था; **सहसा**=संशय; **संजम**=संयम, साधन, उपाय।

सरलार्थ: मनुष्य अपने यत्न द्वारा सहज अवस्था प्राप्त नहीं कर सकता और सहज अवस्था प्राप्त किये बिना संशय, भ्रम या अज्ञानता का नाश नहीं होता। चाहे जितने कर्म-धर्म और अन्य साधन अपना लिये जायें, उनके द्वारा संशय या अज्ञानता से छुटकारा नहीं मिलता। गुरु साहिब कहते हैं कि शब्द के साथ जुड़कर (शब्द के अभ्यास द्वारा) मन को निर्मल कर लो और सुरत को हरि में लीन कर दो। जब गुरु की कृपा

द्वारा शब्द के अभ्यास से मन निर्मल हो जाता है और आत्मा हरि में समा जाती है तो सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है और इस प्रकार संशय, भ्रम तथा अज्ञानता का नाश हो जाता है।

❖ ***करमी सहज न ऊपजै विण सहजै सहसा न जाए॥***
नह जाए सहसा कितै संजम रहे करम कमाए॥

गुरु साहिब कहते हैं: नाम के मार्ग द्वारा प्राप्त होनेवाली सहज अवस्था, परिवर्तन, विनाश और मृत्यु से परे है। यह निश्चल, अडोल, अखंड, अभंग, परिवर्तनरहित अवस्था हर प्रकार के द्वैत या अनेकता और इससे उत्पन्न होनेवाले ऐंद्रिय दुःख-सुख से ऊपर है। गुरु साहिब के कहने का भाव है कि जब तक शब्द के साथ लिव नहीं जुड़ती, तब तक इनसान सत्य के बारे में दुविधा में रहता है। ग्रंथों और शास्त्रों में नाम के अभ्यास की जितनी चाहे महिमा पढ़ ली जाये, मन में इस साधन के सही होने का पक्का विश्वास केवल निजी अनुभव द्वारा ही प्राप्त होता है।

सहज की प्राप्ति का अर्थ प्रभु की प्राप्ति है। मनुष्य का अपनी बल-बुद्धि द्वारा सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञाता प्रभु के साथ मिलाप कर पाना असंभव है। वाणी के अधिकतर प्रसंगों में बताया गया है कि सतगुरु भी प्रभु का रूप होता है और नाम जिसके द्वारा सहज की प्राप्ति होती है, यह भी प्रभु का रूप है। प्रभु की प्राप्ति उसकी दया से, सतगुरु और नाम द्वारा होती है। दूसरे शब्दों में, प्रभु की दया सतगुरु और नाम के रूप में कार्यशील होकर प्रभु की प्राप्ति का साधन बनती है।

सहसै जीउ मलीण है कित संजम धोता जाए॥
मंन धोवहो सबद लागहो हर सिउ रहहो चित लाए॥
कहै नानक गुर परसादी सहज उपजै इह सहसा इव जाए॥

गुरु साहिब प्रश्न करते हैं कि संशय, भ्रम और अज्ञानता की मैल से दूषित हो चुका जीव, कैसे साफ़ हो सकता है? आप अपने प्रश्न का ख़ुद ही उत्तर देते हैं कि संशय, भ्रम और अज्ञानता का नाश, आत्मा को शब्द के अमृत में स्नान

करवाने से होता है। सतगुरु की समझायी युक्ति के अनुसार जब आत्मा शब्द के साथ जुड़ जाती है तो इसको सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है। सहज अवस्था चौथे पद में पहुँचकर परमेश्वर से मिलाप करने पर प्राप्त होती है। क़ुदरती तौर पर उस अवस्था में पहुँचकर जीव को परम तत्त्व का ज्ञान हो जाता है और वह हर प्रकार के संशय और भ्रम से मुक्त हो जाता है।

गुरु साहिब वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

त्रै गुण सभा धात है दूजा भाउ विकार ॥
पंडित पड़ै बंधन मोह बाधा नह बूझै बिखिआ पिआर॥
सतगुर मिलिऐ त्रिकुटी छूटै चउथै पद मुकत दुआर॥[83]

तीनों गुणों तक की संपूर्ण रचना माया का विषैला पसारा है जो मन में एक प्रभु के बजाय माया की अनेक शक्लों और पदार्थों का मोह पैदा करने का प्रमुख कारण है। यह माया का पसारा ही जीवात्मा को जन्म-मरण के चक्कर के साथ बाँधकर रखता है। जब हम सतगुरु के उपदेशानुसार नाम के साथ लिव जोड़ कर त्रिकुटी से पार चले जाते हैं, तो चौथे पद यानी सहज अवस्था में पहुँच कर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

गुरु साहिब ने त्रिलोकी तक की संपूर्ण स्थूल और सूक्ष्म रचना को परिवर्तनशील और नाशवान् माना है। जब तक हम त्रिलोकी की सीमा में हैं तब तक परिवर्तन, विनाश और मृत्यु के दु:ख से आज़ाद होकर सहज सुख के देश (सचखण्ड) में नहीं पहुँच सकते। त्रिलोकी के शिखर को संतों की भाषा में त्रिकुटी कहा गया है। इसे तीनों गुणों की गाँठ वाली अवस्था कह लें या दूसरा रूहानी मंडल त्रिकुटी कह लें, एक ही बात है। गुरु नानक देव जी का कथन है:

जप तप कर कर संजम थाकी हठ निग्रह नही पाईऐ॥
नानक सहज मिले जगजीवन सतिगुर बूझ बुझाईऐ॥[84]

कहै नानक गुर परसादी सहज उपजै इह सहसा इव जाए॥ – गुरु साहिब कहते हैं कि सहज अवस्था सतगुरु की दया द्वारा शब्द के साथ लिव जोड़ने से प्राप्त होती है। संशय का नाश भी शब्द के साथ लिव जोड़ने से होता है

और मन में सच्चा प्रेम और पक्का विश्वास भी शब्द के साथ लिव जोड़ने से पैदा होता है।

जीअहो मैले बाहरहो निरमल॥
बाहरहो निरमल जीअहो त मैले तिनी जनम जूऐ हारिआ॥
एह तिसना वडा रोग लगा मरण मनहो विसारिआ॥
वेदा मह नाम उतम सो सुणह नाही फिरह जिउ बेतालिआ॥
कहै नानक जिन सच तजिआ कूड़े लागे तिनी जनम जूऐ हारिआ॥१९॥

जीअहो=मन से; **बेतालिआ**=भूत, ताल से बेताल होना।

सरलार्थ: संसार के अधिकतर लोग ऐसे हैं जिनके मन और आत्मा मैले हैं, पर शरीर साफ़-सुथरे हैं। ऐसे लोग जो शारीरिक तौर पर निर्मल हैं, परंतु अंदर से मैले हैं, समझो उन्होंने अपना मनुष्य-जन्म जुए में हार दिया है। वे दुनियावी तृष्णा के भयानक रोग से पीड़ित हैं और उन्होंने मृत्यु को भी भुला दिया है। वेदों में सबसे उत्तम बात नाम की महिमा है। वे अज्ञानी लोग नाम के साथ तो लिव जोड़ते नहीं, भूतों की तरह (अन्य कर्मकांडों में) भटकते रहते हैं। गुरु साहिब फ़रमाते हैं: जिन लोगों ने प्रभु या नामरूपी सत्य को त्यागकर मायारूपी असत्य से मोह लगाया हुआ है, उन्होंने अपना अमूल्य जन्म जुए में हार दिया है।

❖ ***जीअहो मैले बाहरहो निरमल॥***
बाहरहो निरमल जीअहो त मैले तिनी जनम जूऐ हारिआ॥

गुरु साहिब ने पिछली पउड़ी में समझाया है कि मन की निर्मलता का साधन शब्द है। जुआरी अपनी ओर से अधिक पैसा जीतने के लिये दाँव लगाता है परंतु अपनी मूल पूँजी भी गँवाकर बैठ जाता है। गुरु साहिब सावधान करते हैं कि जो लोग शब्द की साधना से मन की सफ़ाई की ओर ध्यान देने के बजाय बाहरी सफ़ाई में ही लगे रहते हैं, अपना दुर्लभ जन्म व्यर्थ गँवा देते हैं। आपका भाव है कि जो लोग

हवन-यज्ञ आदि द्वारा वातावरण की शुद्धि और तीर्थों के स्नान से शरीर की शुद्धि में ही लगे रहते हैं, पर मन की शुद्धि की ओर ध्यान नहीं देते, अंत में पश्चात्ताप करते हैं।

गुरु नानक साहिब की वाणी है:

नावण चले तीरथी मन खोटै तन चोर॥
इक भाउ लथी नातिआ दुइ भा चड़ीअस होर॥
बाहर धोती तूमड़ी अंदर विस निकोर॥
साध भले अणनातिआ चोर सि चोरा चोर॥[85]

आप कहते हैं कि कड़वी तुंबी को चाहे कितना ही पानी में धो लो, उसके अंदर की कड़वाहट दूर नहीं होती। इसी तरह तीर्थों पर स्नान करने से मन की मैल दूर नहीं होती, बल्कि अहंकार की मैल में वृद्धि हो जाती है। बुरी वृत्ति वाला व्यक्ति तीर्थों पर स्नान करने के बावजूद बुरा ही रहता है और निर्मल वृत्तिवाला व्यक्ति बिना बाहरी स्नान के भी निर्मल होता है। गुरु साहिब वाणी के एक अन्य प्रसंग में सावधान करते हैं:

मन मैलै सभ किछ मैला तन धोतै मन हछा न होए॥
इह जगत भरम भुलाइआ विरला बूझै कोए॥[86]

गुरु रविदास जी की वाणी है:

बाहर उदक पखारीऐ घट भीतर बिबिध बिकार॥
सुध कवन पर होइबो सुच कुंचर बिध बिउहार॥[87]

हाथी को दरिया में स्नान करवा दो, वह बाहर निकलकर शरीर पर मिट्टी डाल लेता है। उसका नहाना व्यर्थ चला जाता है। इसी प्रकार जब तक हृदय विकारों की मैल से भरा हुआ है, तीर्थों पर जाकर बार-बार स्नान करने का भी कोई लाभ नहीं।

एह तिसना वडा रोग लगा मरण मनहो विसारिआ॥– गुरु साहिब सावधान करते हैं कि बीमारी कुछ हो तथा इलाज कुछ और ही करते जायें तो बीमारी से छुटकारा नहीं मिल सकता। आप कहते हैं कि इसी तरह हमें वास्तविक रोग तो आशा-तृष्णा और जन्म-मरण का है, परंतु इलाज शरीर की सफ़ाई का करते

जा रहे हैं। गुरु अर्जुन देव जी का शब्द है: 'वडे वडे राजन अर भूमन ता की त्रिसन न बूझी॥'[88] तृष्णा बड़े-बड़े राजाओं और भूपतियों की भी शांत नहीं हुई। वे माया के नशे में अंधे हो जाते हैं तथा उन्हें अपने वास्तविक लाभ-हानि नज़र नहीं आते। जिस तरह अग्नि में जितना अधिक ईंधन डालो, वह और अधिक भड़कती है, उसी तरह जितने अधिक भोग-पदार्थ मिलते हैं इन्हें पाने की तृष्णा और अधिक बढ़ती जाती है। जब तक प्रभु के साथ मिलाप नहीं होता, तृष्णा की अग्नि के शांत होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। गुरुमुख जन सतगुरु की कृपा द्वारा प्रभु के अमूल्य नामरूपी अमृत को पीते हैं, जो हर प्रकार की तृष्णाओं को शांत करके उन्हें सर्व सुखों का अधिकारी बना देती है। गुरु रामदास जी की वाणी है: '*नाम मिलै मन त्रिपतीऐ बिन नामै ध्रिग जीवास॥*'[89] मन जब भी शांत होता है, नाम का अमृत पीकर होता है।

वेदा मह नाम उतम सो सुणह नाही फिरह जिउ बेतालिआ॥– 'तृष्णा' और 'जन्म-मरण' के रोग का क्या इलाज है? आप कहते हैं कि वेदों में उपदेश दिया गया है कि इस रोग का इलाज नाम यानी शब्द है। लोग नाम के साथ लिव तो जोड़ते नहीं, मूर्खों या भूतों की तरह अनेक प्रकार के कर्मकांडों में भटकते रहते हैं। *बेतालिआ*– बेताला उसे कहते हैं जो ताल से बेताल हो रहा हो। भाव वही है कि नाम के अभ्यास के बिना जो भी दूसरा प्रयत्न करते हैं, बेसुरा राग गाने के समान है। गुरु नानक साहिब का कथन है:

रिग कहै रहिआ भरपूर॥ राम नाम देवा मह सूर॥[90]

ऋग्वेद सर्वव्यापक और सर्वश्रेष्ठ नाम की महिमा करता है। संत चरनदास जी की वाणी है:

चार बेद किये ब्यास ने, अर्थ बिचार बिचार॥
तामें निकसी भक्ति ही, राम नाम तत सार॥[91]

आप कहते हैं कि ऋषि वेद व्यास जी ने नाम भक्ति को ही वेदों का सार माना है। गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं कि चारों युगों और चारों वेदों में नाम भक्ति का प्रभाव स्वीकार किया गया है:

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ॥[92]

गुरु नानक साहिब का कथन है:

सिम्रित बेद पुराण पुकारन पोथीआ॥
नाम बिना सभ कूड़ गाल्ही होछीआ॥
नाम निधान अपार भगता मन वसै॥
जनम मरण मोह दुख साधू संग नसै॥
मोह बाद अहंकार सरपर रुंनिआ॥
सुख न पाइन्हि मूल नाम विछुंनिआ॥[93]

गुरु साहिब कहते हैं कि स्मृतियाँ, वेद, पुराण और अन्य सब धर्म ग्रंथ सर्वसम्मति से नाम की महिमा कर रहे हैं। संसार के सब धर्म ग्रंथ उपदेश देते हैं कि नाम के बिना जो कुछ है कूड़, तुच्छ या व्यर्थ है। सर्वसुखों से भरपूर नाम का अपार भंडार भक्तों के मन में है। जो कोई साधु संतों की संगति द्वारा उस अमूल्य, अकथ, अनंत भंडार को प्राप्त कर लेता है, वह माया के भ्रम और आवागमन के बंधन से सदा के लिये मुक्त हो जाता है। आप चेतावनी देते हैं कि नाम विहीन लोग मनमत या अहंकार का शिकार होकर माया-मोह द्वारा पैदा किये झगड़ों या झमेलों में ही उलझे रहते हैं। उन्हें अंत में अवश्य रोना और पछताना पड़ता है। उन्हें कभी सपने में भी सच्चा सुख नसीब नहीं हो सकता।

कहै नानक जिन सच तजिआ कूड़े लागे तिनी जनम जूऐ हारिआ॥– आप चेतावनी देते हैं कि जो लोग नामरूपी सत्य को छोड़कर झूठे संसार के मोह में फँसे रहते हैं, उनका जन्म व्यर्थ व्यतीत हो जाता है।

जीअहो निरमल बाहरहो निरमल॥
बाहरहो त निरमल जीअहो निरमल सतिगुर ते करणी कमाणी॥
कूड़ की सोए पहुचै नाही मनसा सच समाणी॥
जनम रतन जिनी खटिआ भले से वणजारे॥
कहै नानक जिन मंन निरमल सदा रहह गुर नाले॥ २०॥

करणी कमाणी=करनी अपनाई; **कूड़**=नाशवान्, झूठ; **सोए**=गंध।

सरलार्थ: धन्य हैं वे लोग जिन्होंने (नाम के अभ्यास द्वारा) मन और आत्मा को निर्मल कर लिया है। इसके फलस्वरूप उनकी रहनी भी निर्मल हो गयी है। मन और आत्मा और रहनी-करनी की निर्मलता प्राप्त करने की युक्ति सतगुरु से प्राप्त होती है। ऐसे भाग्यशाली लोगों की सुरत इस तरह सच्चे प्रभु में समायी रहती है कि माया की गंध भी उनके पास नहीं आ सकती। जिन्होंने मनुष्य जन्म पाकर प्रभुरूपी हीरा प्राप्त कर लिया है, वही सच्चे व्यापारी हैं। गुरु साहिब कहते हैं: जिनके मन निर्मल हो जाते हैं वे सदा गुरु में समाये रहते हैं।

❖ ***जीअहो निरमल बाहरहो निरमल॥***
बाहरहो त निरमल जीअहो निरमल सतिगुर ते करणी कमाणी॥

पिछली पउड़ी वाले विचार को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि जिनका हृदय निर्मल हो गया है तथा मन से आशा-तृष्णा और विषय-विकारों की मैल निकल गयी, वही पूरी तरह से निर्मल हैं। *सतिगुर ते करणी कमाणी*– गुरु साहिब कहते हैं कि तन और मन जब भी निर्मल होते हैं, सतगुरु के उपदेशानुसार नाम का अभ्यास करने से होते हैं। जो भाग्यशाली जीव सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द के साथ जुड़ जाते हैं, वे माया-मोह के कूड़ से सदा के लिये मुक्त हो जाते हैं।

कूड़ की सोए पहुचै नाही मनसा सच समाणी॥
जनम रतन जिनी खटिआ भले से वणजारे॥

जिनकी सुरत अंदर शब्द के अमृत से स्नान कर लेती है, वे विषय-विकारों, आशा-तृष्णाओं, कर्म-संस्कारों की मैल से सदा के लिये मुक्त हो जाते हैं। उनकी तृष्णा का नाश हो जाता है तथा वे प्रभुरूपी सत्य के प्रेम में लीन हो जाते हैं। जो भाग्यशाली जीव नामरूपी सत्य का व्यापार करते हैं, वही सच्चे व्यापारी हैं और उनका ही मनुष्य जन्म सफल है। आप फ़रमाते हैं:

इक सच वणंजह गुर सबद पिआरे॥
आप तरह सगले कुल तारे॥
आए से परवाण होए मिल प्रीतम सुख पावणिआ॥[94]

सचा सउदा हर नाम है सचा वापारा राम॥
गुरमती हर नाम वणजीऐ अत मोल अफारा राम॥
अत मोल अफारा सच वापारा सच वापार लगे वडभागी॥[95]

गुरु नानक साहिब का कथन है:

सचा वखर नाम है सचा वापारा॥
लाहा नाम संसार है गुरमती वीचारा॥[96]

नाम ही सच्चा सौदा है, नाम का व्यापार ही सच्चा व्यापार है तथा इस व्यापार से ही सच्चा लाभ प्राप्त हो सकता है।

कहै नानक जिन मंन निरमल सदा रहह गुर नाले॥– गुरु साहिब दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि मन जब भी निर्मल होता है सतगुरु के उपदेशानुसार नाम के अभ्यास द्वारा होता है। जो एक बार शब्द (नाम) में समा जाते हैं उनका सतगुरु का वियोग सदा के लिये दूर हो जाता है।

जे को सिख गुरू सेती सनमुख होवै॥
होवै त सनमुख सिख कोई जीअहो रहै गुर नाले॥
गुर के चरन हिरदै धिआए अंतर आतमै समाले॥
आप छड सदा रहै परणै गुर बिन अवर न जाणै कोए॥
कहै नानक सुणहो संतहो सो सिख सनमुख होए॥ २१॥

परणै=शरण।

सरलार्थ: जो शिष्य चाहता है कि वह सदा सतगुरु के समक्ष यानी सतगुरु के सामने रहे, उसे चाहिये कि वह सदा सतगुरु के ध्यान में मग्न रहे। उसे चाहिये कि हृदय में सतगुरु के चरण कमलों का ध्यान

करे और अपनी आत्मा को सतगुरु में लीन कर ले। अपना आपा-भाव त्यागकर सदा सतगुरु की शरण में रहे। वह इस तरह से सतगुरु के ध्यान में मग्न रहे कि उसे सतगुरु के सिवाय दूसरा कोई नज़र ही न आये। गुरु साहिब फ़रमाते हैं: हे संतो! मेरी बात ध्यान से सुनो कि ऐसा शिष्य सदा सतगुरु की हुज़ूरी में रहता है।

❖ ***जे को सिख गुरू सेती सनमुख होवै॥***
होवै त सनमुख सिख कोई जीअहो रहै गुर नाले॥

गुरु साहिब ने पिछली पउड़ी का अंत इस विचार से किया था: 'कहै नानक जिन मंन निरमल सदा रहह गुर नाले॥' मन में प्रश्न उत्पन्न होता है कि कोई शिष्य सदा गुरु के साथ कैसे रह सकता है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं: *जीअहो रहै गुर नाले*– सच्चा शिष्य शरीर द्वारा नहीं, सुरत यानी आत्मा द्वारा सदा गुरु के साथ रहता है।

गुरु नानक साहिब ने शिष्य और गुरु के संबंध का रहस्य बहुत सुंदर ढंग से खोला है। आपका कथन है: 'सबद गुरू सुरत धुन चेला॥'[97] न शरीर शिष्य है और न ही शरीर गुरु है। सुरत शिष्य है और शब्द गुरु है। गुरु साहिब ने शब्द के साथ 'धुन' पद जोड़ा है। आप ग्रंथों और शास्त्रों के लिखने, पढ़ने, बोलने और सुनने में आनेवाले शब्द की ओर नहीं, बल्कि अंदर सुरत द्वारा ध्वनि के रूप में सुनायी देनेवाले शब्द की ओर संकेत कर रहे हैं। आपने इस शब्द को 'अजपा जाप' कहा है। आप लिखते हैं: 'अजपा जाप न वीसरै आद जुगाद समाए॥'[98] जब सुरत अंदर शब्द के 'अजपा जाप' से जुड़ जाती है तो यह क्षण भर के लिये भी उससे अलग नहीं होती। सुरतरूपी शिष्य केवल शब्दरूपी गुरु की हुज़ूरी में ही रह सकता है।

गुरु नानक साहिब और गुरु अमरदास जी शिष्य और गुरु की परिभाषा का वर्णन कर रहे हैं। सच्चा शिष्य वह है जो सुरत द्वारा पल-पल शब्द गुरु के साथ जुड़ा रहता है और सच्चा गुरु शब्द है जो कभी पलभर के लिये भी सुरतरूपी शिष्य से दूर नहीं होता। गुरु अर्जुन देव जी इस विचार का दूसरा पहलू सामने रखते हैं:

सतिगुर सिख का हलत पलत सवारै॥
नानक सतिगुर सिख कउ जीअ नाल समारै॥[99]

सतगुरु शब्द रूप या आत्मिक रूप से सदा शिष्य के साथ रहता है। शिष्य भी सुरत रूप में ही सतगुरु के साथ रहता है। आप कहते हैं:

सफल मूरत गुर मेरै माथै॥ जत कत पेखउ तत तत साथै॥[100]

गुर के चरन हिरदै धिआए अंतर आतमै समाले॥– शिष्य को चाहिये कि हृदय में गुरु के चरणों का ध्यान करे। शिष्य यह कार्य कैसे कर सकता है? *'अंतर आतमै समाले'*– शिष्य को चाहिये कि गुरु के चरण अंतर में अपनी आत्मा द्वारा सँभाल ले। फिर वही प्रश्न उत्पन्न होता है कि आत्मा द्वारा चरण कैसे सँभाले जा सकते हैं? ऊपर भी कह आये हैं कि गुरु साहिब देहरूप के नहीं, शब्दरूप के स्थायी साथ का उपदेश दे रहे हैं। इसी तरह गुरु साहिब गुरु के बाहरी चरणों की ओर नहीं, आंतरिक सूक्ष्म चरणों की ओर संकेत कर रहे हैं।

गुरबानी में गुरु के चरणों का कई तरह से उल्लेख हुआ है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

उकत सिआणप सगली तिआग॥ संत जना की चरणी लाग॥[101]

नेत्र पुनीत पेखत ही दरस॥ धन मसतक चरन कमल ही परस॥[102]

भाई गुरदास जी सतगुरु की चरण शरण के बारे में इस तरह लिखते हैं:

चिरंकाल मानस जनम निरमोल पाए, सफल जनम गुर चरन सरन कै।
.....
नासिका अमोल चरनारबिंद बासना कै, रसना अमोल गुर मंत्र सिमरन कै॥
हसत अमोल गुरुदेव सेव कै सफल, चरन अमोल परदच्छना करन कै॥[103]

उपर्युक्त वर्णन सतगुरु की शरण, सतगुरु के दर्शन और सतगुरु की सेवा से लेकर सतगुरु द्वारा बख़्शे गुरुमंत्र के जाप तक फैला हुआ है। इसके साथ ही गुरबानी में भी ऐसे वर्णन प्राप्त हैं:

गुर के चरन हिरदै वसाए॥ मन चिंतत सगले फल पाए॥[104]

इसके साथ ही गुरु साहिब ने यह सुंदर संकेत भी किया है:

नीकी राम की धुन सोए॥
चरन कमल अनूप सुआमी जपत साधू होए॥[105]

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि चरण कमल से भाव शब्द की ध्वनि और शब्द का प्रकाश है।

गुरु अर्जुन देव जी उपर्युक्त विचारधारा का वर्णन करते हुए कहते हैं:

चरण कमल रिद अंतर धारे॥ प्रगटी जोत मिले राम पिआरे॥
पंच सखी मिल मंगल गाइआ॥ अनहद बाणी नाद वजाइआ॥
गुर नानक तुठा मिलिआ हर राए॥ सुख रैण विहाणी सहज सुभाए॥[106]

अंदर अनहद वाणी का मधुर नाद बजना शुरू हो गया और शब्द की ज्योति प्रकट हो गयी। सतगुरु की कृपा द्वारा हरिरूपी प्रियतम से मिलाप हो गया। हरि के दरबार में पहुँच चुकी दूसरी गुरुमुख सखियों के साथ मिलकर आनंद के राग गाने शुरू कर दिये। इस तरह मनुष्य जन्म की रात आनंदपूर्वक व्यतीत हो गयी।

आप छड सदा रहै परणै गुर बिन अवर न जाणै कोए॥
कहै नानक सुणहो संतहो सो सिख सनमुख होए॥

आप छड– का एक अर्थ आपा-भाव का त्याग कर देना है। इसका दूसरा भाव सुरत को शब्द में लीन कर देना है। 'आपा-भाव' तब तक है जब तक शिष्य अपना अस्तित्व शरीर और मन तक सीमित समझता है। गुरु साहिब 'आप छड' को 'गुर बिन अवर न जाणै कोए' के साथ जोड़ते हैं। शिष्य को चाहिये कि मन की मर्ज़ी का त्याग करके तन-मन से सतगुरु के उपदेश का पालन करे ताकि वह सही अर्थों में सतगुरु का शिष्य बन जाये।

जे को गुर ते वेमुख होवै बिन सतिगुर मुकत न पावै॥
पावै मुकत न होर थै कोई पुछहो बिबेकीआ जाये॥
अनेक जूनी भरम आवै विण सतिगुर मुकत न पाए॥
फिर मुकत पाए लाग चरणी सतिगुरू सबद सुणाए॥
कहै नानक वीचार देखहो विण सतिगुर मुकत न पाए॥ २२॥

बिबेकीआ=विवेकशील, ज्ञानीजन।

सरलार्थ: जो व्यक्ति गुरु से मुख मोड़ लेता है, जो सतगुरु की शिक्षा पर अमल नहीं करता, वह कभी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। चाहे जितने विचारकों और ज्ञानियों से पूछकर देख लो, ऐसे व्यक्ति को कभी मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। वह चाहे अनेक योनियों और अनेक जन्मों में भटकता रहे, उसे सतगुरु के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। उसे जब भी मुक्ति मिलेगी सतगुरु के चरणों की शरण में जाने से मिलेगी और मुक्ति तब ही मिलेगी जब सतगुरु उसकी सुरत को शब्द के साथ जोड़ेंगे। गुरु साहिब कहते हैं कि अच्छी तरह से विचार करके देख लो, सतगुरु के बिना मुक्ति प्राप्त होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

❖ ***जे को गुर ते वेमुख होवै बिन सतिगुर मुकत न पावै॥***
पावै मुकत न होर थै कोई पुछहो बिबेकीआ जाये॥

गुरु साहिब ने पिछली पउड़ी में 'जे को सिख गुर सेती सनमुख होवै' से अपनी बात शुरू की थी। अब गुरु साहिब अपनी बात 'जे को गुर ते वेमुख होवै' के साथ शुरू कर रहे हैं। आप सावधान करते हैं: जिसने गुरु की तरफ़ से मुख मोड़ा हुआ है, जो गुरु की आवश्यकता अनुभव नहीं करता, जो मनचाहे साधन और मार्ग द्वारा प्रभु प्राप्ति की आशा रखता है, ऐसा व्यक्ति भ्रम का शिकार है। आप ज़ोरदार शब्दों में कहते हैं कि चाहे कितने ही ब्रह्मज्ञानियों या पूर्णपुरुषों से पूछकर देख लो, सभी एक आवाज़ में इस बात पर ज़ोर देंगें कि पूर्ण सतगुरु के उपदेश पर चले बिना मुक्ति प्राप्त करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

आप फ़रमाते हैं:

धुर खसमै का हुकम पइआ विण सतिगुर चेतिआ न जाए॥[107]

कहो नानक प्रभ इहै जनाई॥ बिन गुर मुकत न पाईऐ भाई॥[108]

गुरु नानक साहिब का कथन है:

बिन सतिगुर किनै न पाइओ बिन सतिगुर किनै न पाइआ॥
सतिगुर विच आप रखिओन कर परगट आख सुणाइआ॥[109]

गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

सासत बेद सिम्रित सभ सोधे सभ एका बात पुकारी॥
बिन गुर मुकत न कोऊ पावै मन वेखहो कर बीचारी॥[110]

अनेक जूनी भरम आवै विण सतिगुर मुकत न पाए॥
फिर मुकत पाए लाग चरणी सतिगुरू सबद सुणाए॥
कहै नानक वीचार देखहो विण सतिगुर मुकत न पाए॥

गुरु साहिब ज़ोर देकर कहते हैं कि भले ही कोई जीव अनेक योनियों में भटक ले यानी अनेक जन्म ले-ले वह गुरु की शरण के बिना कभी मुक्ति का सपना भी नहीं देख सकता। गुरु साहिब ने 'सतिगुरू' शब्द का प्रयोग किया है। गुरु पूर्ण होना चाहिये। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

घर दर फिर थाकी बहुतेरे॥ जात असंख अंत नही मेरे॥
केते मात पिता सुत धीआ॥ केते गुर चेले फुन हूआ॥
काचे गुर ते मुकत न हूआ॥
केती नार वर एक समाल॥ गुरमुख मरण जीवण प्रभ नाल॥
दह दिस ढूढ घरै मह पाइआ॥ मेल भइआ सतिगुरू मिलाइआ॥[111]

नम्रता और दया के पुंज सतगुरु जीवात्मा की दशा को अपने ऊपर घटाते हुए उपदेश देते हैं: अनेक योनियों में अनेक माता-पिता, बेटे-बेटियाँ ही नहीं,

गुरु और शिष्य का जन्म भी हुआ परंतु अधूरे गुरु के कारण मुक्ति प्राप्त न हो सकी। मैं प्रभु को ढूँढ़ता हुआ थक गया। '*मेल भइआ सतिगुरू मिलाइआ*'– जब पूर्ण सतगुरु का मिलाप हो गया तो बाहरी भटकन समाप्त हो गयी और '*घरै मह पाइआ*'– अर्थात् अंदर से ही प्रभु के साथ मिलाप हो गया। पूर्ण सतगुरु ने किस तरह से मिलाप करवाया? *सतिगुरू सबद सुणाए*– सतगुरु ने अनंत काल से शब्द से बिछुड़ी हुई आत्मा को फिर से शब्द के साथ जोड़ दिया और शब्द ने उसे अपने में समाकर प्रभु में समा दिया।

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

नदर करह जे आपणी ता नदरी सतिगुर पाइआ॥
एह जीउ बहुते जनम भरंमिआ ता सतिगुर सबद सुणाइआ॥
सतिगुर जेवड दाता को नही सभ सुणिअहो लोक सबाइआ॥
सतिगुर मिलिऐ सच पाइआ जिन्ही विचहो आप गवाइआ॥
जिन सचो सच बुझाइआ॥[112]

सतिगुर सबद सुणाइआ– अनंत काल से अनेक योनियों में भटक रहे जीव का प्रभु की कृपा द्वारा सतगुरु से मिलाप हो गया। सतगुरु ने दया करके, उसकी सुरत को शब्द के साथ जोड़ दिया। इस तरह अहंकार का नाश हो गया और प्रभु के साथ मिलाप हो गया।

कहै नानक वीचार देखहो विण सतिगुर मुकत न पाए॥– आप फिर ज़ोर देकर कहते हैं कि चाहे संतजनों के उपदेश को ध्यान में रखते हुए गहराई से विचार करके देख लो, सतगुरु के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

प्रभु की भक्ति ऐसी वास्तविक दिव्य विद्या है जिसका संबंध आध्यात्मिक अभ्यास से है। ग्रंथों और शास्त्रों में इस अभ्यास की महत्ता दर्शायी गयी है और इस के मुख्य अंगों पर प्रकाश डाला गया है। परंतु जिस तरह से उस्ताद शागिर्द को पानी में तैरना सिखाता है या पहलवान के रूप में अपनी देख-रेख में व्यायाम करवाता है तथा कुश्ती के दाँव-पेच सिखाता है, उसी तरह से सतगुरु दीक्षा अर्थात् नामदान के समय शिष्य को रूहानी अभ्यास की विधि समझाता है और रूह की चढ़ाई के समय आंतरिक मंडलों में आनेवाली रुकावटों को पार

करने की युक्ति सिखाता है। पूरा गुरु जिसको नाम की दात बख़्शता है, शब्द रूप में पल-पल उसकी रक्षा और अगुवाई करता हुआ, उसे रूहानी अभ्यास में सफलता प्राप्त करने में सहायता देता है।

आवहो सिख सतिगुरू के पिआरिहो गावहो सची बाणी॥
बाणी त गावहो गुरू केरी बाणीआ सिर बाणी॥
जिन कउ नदर करम होवै हिरदै तिना समाणी॥
पीवहो अंम्रित सदा रहहो हर रंग जपिहो सारिगपाणी॥
कहै नानक सदा गावहो एह सची बाणी॥ २३॥

सारिगपाणी=प्रभु।

सरलार्थ: हे सतगुरु के प्रेमी शिष्यो! तुम सच्ची वाणी के साथ लिव जोड़ो। तुम इसलिये गुरु की वाणी के साथ लिव जोड़ो क्योंकि वही सर्वश्रेष्ठ वाणी है। वह वाणी केवल उनके हृदय में समाती है जिन पर प्रभु की दया होती है। सतगुरु के प्यारे शिष्यो! तुम इस वाणीरूपी अमृत को पियो, ताकि सदा हरि के रंग में रँगे रहो और सदा हरि (के नाम) को जपते रहो। गुरु साहिब उपदेश देते हैं: तुम सदा यह सच्ची वाणी गाओ।

❖ ***आवहो सिख सतिगुरू के पिआरिहो गावहो सची बाणी॥***
बाणी त गावहो गुरू केरी बाणीआ सिर बाणी॥

गुरु साहिब प्रेरणा दे रहे हैं कि सतगुरु के प्रेमी सेवको! अच्छी तरह से मन में बिठा लो कि सतगुरु की वाणी सबसे उत्तम, श्रेष्ठ और शिरोमणि है। तुम सतगुरु के वचनों पर विश्वास रखो और बाक़ी सब साधनों से ध्यान निकालकर अपनी लिव सतगुरु की दिव्य वाणी के साथ जोड़ दो।

जिन कउ नदर करम होवै हिरदै तिना समाणी॥
पीवहो अंम्रित सदा रहहो हर रंग जपिहो सारिगपाणी॥
कहै नानक सदा गावहो एह सची बाणी॥

वह वाणी सभी के अंदर सदैव मौजूद है। वर्तमान अवस्था में वह वाणी गुप्त है। जिन भाग्यशाली जीवों पर परमेश्वर की दया हो जाती है, उनके अंदर यह गुप्त वाणी प्रकट हो जाती है। वह वाणी अमृत रूप है। उस वाणी के साथ लिव जोड़ना ही उस प्रभु का नाम जपना है। गुरु साहिब कहते हैं कि अपनी लिव क्षणभर के लिये भी सच्ची वाणी से टूटने न दो। पल-पल, श्वास-श्वास, उस वाणी के साथ जुड़े रहो।

इस पउड़ी में गुरु साहिब ने 'बाणी', 'सची बाणी', 'गुरू केरी बाणी', 'बाणीआ सिर बाणी' पद प्रयुक्त किये हैं। आप ने इस वाणी को अमृत कहा है और इसके द्वारा हरि की भक्ति करने का उपदेश दिया है।

गुरु साहिब के उपर्युक्त वचन महत्त्वपूर्ण तथा गहन हैं जिनका स्पष्टीकरण आवश्यक है। इसलिये यह वचन गहरे विचार और विस्तृत व्याख्या की माँग करते हैं।

'सची बाणी' और 'बाणीआ सिर बाणी' आदि वाक्य पढ़कर मन में प्रश्न उत्पन्न होता है कि अन्य कौन-सी वाणियाँ हैं, जिनकी तरफ़ ध्यान नहीं देना तथा सतगुरु की कौन-सी वाणी सच्ची है जिसकी तरफ़ ध्यान देना है? क्या गुरु साहिब अपनी वाणी 'अनंद' या अपनी सारी वाणी गाने का उपदेश दे रहे हैं? क्या आप अपने सतगुरु, गुरु अंगद देव जी की वाणी गाने का उपदेश दे रहे हैं? गुरु अंगद देव जी का कथन है:

गुण गावै गुण उचरै गुण माहे समाइआ॥
सची बाणी सच है सच मेल मिलाइआ॥[113]

क्या आप अपनी या अपने सतगुरु गुरु नानक साहिब की वाणी को प्रभु के साथ मिलानेवाली सच्ची वाणी कह रहे हैं? गुरु नानक साहिब का कथन है:

सचा भोजन भाउ सच सच नाम अधारा॥
सची बाणी संतोखिआ सचा सबद वीचारा॥[114]

वह कौन-सी सच्ची वाणी है जो शब्दरूप और नामरूप है? वह कौन-सी सच्ची वाणी है जो आत्मा का सच्चा भोजन और जीवन का आधार है?

जो वाणी आत्मा का आधार हो, वह वाणी आत्मा की तरह अनादि, अविनाशी और सर्वव्यापक होनी चाहिये।

संत-महात्माओं के अनुसार दो प्रकार की वाणी है: बाहरी और आंतरिक। लिखने, पढ़ने, बोलने, सुनने में आनेवाली बाहरी वाणी इंद्रियों का विषय है। आंतरिक वाणी का अनुभव आत्मा द्वारा होता है।

पूर्णपुरुषों द्वारा रचित बाहरी वाणी भी धन्य है, यह परम पवित्र वाणी ही आंतरिक सच्ची वाणी का संदेश हम तक पहुँचाती है तथा यही अंदर से सच्ची वाणी का अमृत पीने की प्रेरणा देती है। इस वाणी की महिमा करते हुए गुरु अर्जुन साहिब फ़रमाते हैं:

बाणी उचरह साध जन अमिउ चलह झरणे॥
पेख दरसन नानक जीविआ मन अंदर धरणे॥[115]

गुरु रामदास जी का कथन है:

हर जन ऊतम ऊतम बाणी मुख बोलह परउपकारे॥
जो जन सुणै सरधा भगति सेती कर किरपा हर निसतारे॥[116]

संत सतगुरु उत्तम हैं। परोपकार के भाव से उच्चारण की गयी उनकी वाणी भी उत्तम है। जो लोग श्रद्धापूर्वक इस वाणी को सुनकर इस पर अमल करते हैं, वे भवसागर से पार हो जाते हैं। गुरु नानक साहिब उपदेश देते हैं:

प्रभ बेअंत गुरमत को पावह॥ गुर कै सबद मन कउ समझावह॥
सतिगुर की बाणी सत सत कर मानहो इउ आतम रामै लीना हे॥[117]

शिष्यों को चाहिये कि वे मन की मति त्यागकर पूरी तरह से गुरु की मति धारण कर लें। यदि वे सतगुरु के उपदेश पर तन-मन से अमल करेंगे तो उनकी आत्मा, परमात्मा में समाकर उसी का रूप हो जायेगी।

गुरु साहिब ऐसी वाणी की बात कर रहे हैं जो सर्वदेशीय और सर्वकालीन है। वह वाणी किसी विशेष भाषा, विशेष स्थान और विशेष समय तक सीमित नहीं है। आप कहते हैं:

आखण वेखण बोलणा सबदे रहिआ समाए॥
बाणी वजी चहु जुगी सचो सच सुणाए॥[118]

आप कहते हैं कि वह वाणी लिखने, पढ़ने, बोलने की सीमा में नहीं है। वह शब्द रूप में चारों युगों से सारे संसार में गूँज रही है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है: *'जो प्राणी गोविंद धिआवै॥ पड़िआ अणपड़िआ परम गत पावै॥'*[119]

वर्तमान अवस्था में मनुष्य का ध्यान आँखों के ऊपर से उतरकर सारे शरीर में फैला हुआ है। वह वाणी ध्यान को अंतर में आँखों से ऊपर एकाग्र करने से प्राप्त होती है। आँखों से ऊपर तीन सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं: बाईं ओर की इड़ा, दाईं ओर की पिंगला और बीच की सुषुम्ना। गुरु अमरदास जी संकेत करते हैं कि पूरे गुरु की सच्ची वाणी सुषुम्ना में सहज रूप में समायी हुई है। जो कोई ध्यान अंदर सुषुम्ना में स्थिर करता है, सहज रूप में उस वाणी के साथ जुड़ जाता है।

पूरे गुर की साची बाणी॥ सुख मन अंतर सहज समाणी॥[120]

गुरु अर्जुन साहिब का कथन है:

गुर की बाणी सभ माहे समाणी॥ आप सुणी तै आप वखाणी॥
जिन जिन जपी तेई सभ निसत्रे तिन पाइआ निहचल थानां हे॥[121]

वह सच्ची वाणी जिसका भेद सतगुरु से मिलता है, हर जीवात्मा के अंदर निरंतर गूँज रही है। अनहद शब्द यानी अनहद वाणी की ध्वनि और उसका प्रकाश बाहरी कानों और बाहरी आँखों का विषय नहीं है। वह सूक्ष्म ध्वनि और प्रकाश इंद्रियों की पहुँच से परे है जिसकी अनुभूति आत्मा के कान और आत्मा के नेत्र द्वारा होती है। गुरु अंगद देव जी ने इशारा किया है: *'अखी बाझहो वेखणा विण कंना सुनणा॥'*[122] शब्द अर्थात् नामरूपी वाणी की ध्वनि सुनने के लिये बाहरी कानों की ज़रूरत नहीं। उस वाणी का प्रकाश देखने के लिये बाहरी आँखों की ज़रूरत नहीं।

गुरु नानक साहिब का कथन है:

मन बैराग रतउ बैरागी सबद मन बेधिआ मेरी माई॥
अंतर जोत निरंतर बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई॥[123]

आप कहते हैं कि जब शब्द के अभ्यास द्वारा मन संसार की ओर से विरक्त होकर अंदर आँखों के पीछे स्थिर हो गया तो अंदर ज्योति दिखायी देने लगी और उसमें से निकल रही वाणी की ध्वनि सुनायी देने लगी। इस तरह से सच्चे साहिब के साथ लिव लग गयी।

गुरु रामदास जी का कथन है:

अंम्रित रस सतिगुरू चुआइआ॥ दसवै दुआर प्रगट होए आइआ॥
तह अनहद सबद वजह धुन बाणी सहजे सहज समाई हे॥[124]

जब ध्यान अंदर दसवें द्वार पर एकाग्र और स्थिर हो गया, तो सुरत वहाँ अनहद शब्दरूपी वाणी की ध्वनि में लीन हो गयी। इससे सहज अवस्था का अद्‌भुत आनंद प्राप्त हो गया।

गुरु नानक साहिब की वाणी है:

नउ सर सुभर दसवै पूरे॥ तह अनहत सुंन वजावह तूरे॥
साचै राचे देख हजूरे॥ घट घट साच रहिआ भरपूरे॥
गुपती बाणी परगट होए॥ नानक परख लए सच सोए॥[125]

आप कहते हैं कि साधक को चाहिये कि नौ द्वारों को पूरी तरह से शांत कर ले और ध्यान दसवें द्वार में स्थिर कर ले। वहाँ उसे सहज सुन्न में अनहद शब्द के साज़ बजते सुनायी देंगे। फिर उसके अंदर प्रभु की शब्दरूपी गुप्त वाणी प्रकट हो जायेगी और उसे प्रभु घट-घट में रमा हुआ दिखायी देने लगेगा। गुरु अर्जुन देव जी संकेत करते हैं:

प्रगटिओ जोत सहज सुख सोभा बाजे अनहत बानी॥
कहो नानक निहचल घर बाधिओ गुर कीओ बंधानी॥[126]

जब अंदर अनहद वाणी की ध्वनि और ज्योति प्रकट हो गयी, तो सतगुरु की कृपा द्वारा आत्मा अपने अविनाशी घर सचखण्ड पहुँच गयी।

शब्द यानी नाम के अभ्यास द्वारा साधक ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है कि उसे प्रयत्न किये बिना ही सहज रूप में नाम (शब्द) की ध्वनि निरंतर सुनायी देती रहती है। जागते हुए ही नहीं, नींद में भी वह ध्वनि बंद नहीं होती।

यदि बुरे भाग्य या कर्मों के चक्कर के कारण वह ध्वनि पलभर के लिये सुनायी देनी बंद हो जाये, तो प्रभु प्रेमी असाध्य रोग से पीड़ित रोगी की भाँति तड़पता है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

निरमल निरमल निरमल तेरी बाणी॥ घट घट सुनी स्रवन बख्याणी॥[127]

अंदर लिव लगाकर सुनी जानेवाली वाणी परम निर्मल और परम चेतन है। उस वाणी में माया की लेशमात्र भी मिलावट नहीं। वह वाणी हर घट में समायी हुई है और अंदर सुरत द्वारा सुनी जाती है।

गुरु साहिब ने प्रभु, नाम और शब्द की तरह वाणी को भी सत्य कहा है। सत्य वह होता है जो अविनाशी और परिवर्तन रहित हो। गुरु अमरदास जी कहते हैं:

आपै आप मिलाए बूझै ता निरमल होवै सोई॥
हर जीउ साचा साची बाणी सबद मिलावा होई॥[128]

गुरमुख बाणी ब्रहम है सबद मिलावा होए॥
नानक नाम समाल तू जित सेविऐ सुख होए॥[129]

आप सच्ची वाणी को प्रभु की वाणी कहते हैं। जो कोई प्रभु की कृपा से उसकी सच्ची वाणी के साथ जुड़ जाता है, उसका प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है।

कहै नानक सदा गावहो एह सची बाणी – गुरु अमरदास जी भी संपूर्ण विश्व को यही सरल, परंतु भावपूर्ण और कल्याणकारी उपदेश दे रहे हैं।

इस सच्ची वाणी को गुरु साहिबान ने गुरु की वाणी या गुरबानी भी कहा है, क्योंकि आप हरि और गुरु में कोई अंतर नहीं समझते। गुरु रामदास जी का कथन है: 'सतिगुर की बाणी सत सरूप है गुरबाणी बणीऐ॥'[130] सतगुरु की दया से प्राप्त होनेवाली वाणी सत्य स्वरूप परमेश्वर का रूप है।

गुरु साहिब ने न केवल गुरबानी के साथ लिव जोड़ने का उपेदश दिया है, बल्कि शब्द यानी वाणी को ही सच्चा गुरु कहा है। गुरु नानक साहिब का फ़रमान है:

पवन अरंभ सतिगुर मत वेला॥ सबद गुरू सुरत धुन चेला॥[131]

तन मन निरमल निरमल बाणी नामो मंन वसाए॥
सबद गुरू भव सागर तरीऐ इत उत एको जाणै॥[132]

नाम मन भावै कहै कहावै ततो तत वखानं॥
सबद गुर पीरा गहिर गंभीरा बिन सबदै जग बउरानं॥[133]

सुरत शिष्य है और शब्द सच्चा गुरु है जो आत्मा को भवसागर से पार ले जाता है। जो लोग सतगुरु की शिक्षा के अनुसार शब्द गुरु के साथ लिव नहीं जोड़ते वे सदा भवसागर में गोते खाते रहते हैं।

देहधारी गुरु का एकमात्र कर्तव्य शिष्य की सुरत को शब्दरूपी गुरु की गोद में डालना है। जीवात्मारूपी शिष्य को सचखण्ड पहुँचाने का कार्य शब्दरूपी गुरु करता है।

सतिगुरू बिना होर कची है बाणी॥
बाणी त कची सतिगुरू बाझहो होर कची बाणी॥
कहदे कचे सुणदे कचे कची आख वखाणी॥
हर हर नित करह रसना कहिआ कछू न जाणी॥
चित जिन का हिर लइआ माइआ बोलन पए रवाणी॥
कहै नानक सतिगुरू बाझहो होर कची बाणी॥ २४॥

रसना=जीभ; **हिर**=ठगना; **रवाणी**=जल्दी-से, भाग-दौड़ में।

सरलार्थ: सतगुरु के प्यारे शिष्यो! सतगुरु के बिना और जो भी वाणी है, कच्ची है। तुम सत्य समझो कि सतगुरु के बिना दूसरी हर वाणी कच्ची है। दूसरी किसी भी वाणी का प्रचार करनेवाले भी कच्चे हैं, दूसरी किसी वाणी को सुननेवाले भी कच्चे हैं और इन कच्चों द्वारा बोलकर कही गयी वाणी भी कच्ची है। वे लोग जीभ द्वारा तो प्रतिदिन हरि-हरि जपते रहते हैं, परंतु उनके मन पर इस जाप का कोई प्रभाव नहीं होता। जिन्हें माया ने ठग लिया है, वे मुँह द्वारा जल्दी-जल्दी

अर्थात् बिना विचारे वाणी पढ़ते जाते हैं। गुरु साहिब फ़रमाते हैं: सतगुरु के बिना हर तरह की वाणी कच्ची है।

❖ ***सतिगुरू बिना होर कची है बाणी॥***
बाणी त कची सतिगुरू बाझहो होर कची बाणी॥

गुरु साहिब ने पिछली पउड़ी में सच्चे गुरु की सच्ची वाणी के साथ जुड़ने का उपदेश दिया है। इन पंक्तियों में दोहरा भाव समझाया गया है। सबसे पहले गुरु साहिब सावधान करते हैं: मेरे प्रेमीजनो! अधूरे गुरु और उसके अधूरे उपदेश से बचो। अधूरा गुरु स्वयं भी कच्चा है और उसका उपदेश भी अधूरा और कच्चा है। अधूरे गुरु की अधूरी वाणी का प्रचार करनेवाले भी कच्चे और अधूरे हैं तथा उसको सुननेवाले भी कच्चे हैं। गुरु अमरदास जी का कथन है:

सचा सबद सची है बाणी॥ गुरमुख जुग जुग आख वखाणी॥[134]

सच्चा शब्द ही सच्ची वाणी है और हर युग में संत-सतगुरु उस सच्ची वाणी का प्रचार करते हैं। आप कहते हैं:

सची बाणी जुग चारे जापै॥ सभ किछ साचा आपे आपै॥[135]

भगत जना की ऊतम बाणी जुग जुग रही समाई॥
बाणी लागै सो गत पाए सबदे सच समाई॥[136]

सच्ची वाणी परमेश्वर का रूप है। वह वाणी सर्वव्यापी है। परमेश्वर के भक्त युगों-युगों से उस उत्तम, श्रेष्ठ और शिरोमणि वाणी की महिमा करते चले आ रहे हैं क्योंकि उस वाणी के साथ लिव जोड़ने से ही प्रभु प्राप्ति की उत्तम अवस्था प्राप्त होती है।

गुरु साहिब वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

सचा नाम धिआए तू सभो वरतै सच॥
नानक हुकमै जो बुझै सो फल पाए सच॥
कथनी बदनी करता फिरै हुकम न बूझै सच॥
नानक हर का भाणा मंने सो भगत होए विण मंने कच निकच॥[137]

गुरु रामदास जी का कथन है:

तू वेपरवाह अथाह है अतुल किउ तुलीऐ॥
से वडभागी जि तुध धिआइदे जिन सतिगुर मिलीऐ॥
सतिगुर की बाणी सत सरूप है गुरबाणी बणीऐ॥
सतिगुर की रीसै होर कच पिच बोलदे सो कूड़िआर कूड़े झड़ पड़ीऐ॥
ओन्हा अंदर होर मुख होर है बिख माइआ नो झख मरदे कड़ीऐ॥[138]

परमेश्वर का नाम या शब्द यानी वाणी परमेश्वर का रूप है। उस नाम यानी वाणी का अभ्यास करनेवाला और उसका उपदेश देनेवाला सतगुरु भी सच्चा और पूर्ण है। जो लोग पूरे गुरु की नक़ल करते हैं, परंतु शब्द अर्थात् नामरूपी सच्ची वाणी के बजाय किसी अन्य साधन का उपदेश देते हैं, वे ख़ुद भी कच्चे और मिथ्या हैं तथा उनका उपदेश भी कच्चा और मिथ्या है। वे माया के पुजारी होते हैं, परंतु परमेश्वर के भक्त होने का दिखावा करते हैं। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

गुर की बाणी गुर ते जाती जि सबद रते रंग लाए॥
पवित पावन से जन निरमल हर कै नाम समाए॥[139]

आप कहते हैं कि गुरु की वाणी का भेद केवल गुरु से ही प्राप्त हो सकता है। चाहे लाखों यत्न कर लिये जायें, बिना सतगुरु की दया के कोई उस वाणी का रहस्य नहीं जान सकता। आप कहते हैं:

सचा सबद सचा है निरमल ना मल लगै न लाए॥
सची सिफत सची सालाह पूरे गुर ते पाए॥[140]

नामरूपी वह वाणी परम निर्मल, परम चेतन है। वह माया की मैल से रहित है। उस वाणी में न कोई मैल है और न ही वह वाणी, अपने साथ जुड़नेवाले में कोई मैल रहने देती है। वह वाणी भी सच्ची है, उस वाणी का गुणगान, उस वाणी की भक्ति ही सच्ची है। जो नामरूपी उस वाणी के साथ लिव जोड़ते हैं, वे उसमें समाकर उसका ही रूप हो जाते हैं।

कहदे कचे सुणदे कचे कची आख वखाणी॥
हर हर नित करह रसना कहिआ कछू न जाणी॥
चित जिन का हिर लइआ माइआ बोलन पए रवाणी॥

गुरु साहिब सावधान करते हैं: 1. सच्चे नाम यानी सच्ची वाणी को छोड़कर किसी अन्य साधन को अपनानेवाले, उसका उपदेश देनेवाले और उस उपदेश पर अमल करनेवाले कच्चे या नाशवान् हैं। 2. वे जिह्वा द्वारा मनमर्ज़ी से प्रभु के किसी भी नाम का सुमिरन करते रहें, उन्हें इससे कोई परमार्थी लाभ नहीं होगा। उनके मन की अवस्था कभी नहीं बदल सकती क्योंकि वह नाम कच्चा है, नाशवान् है। 3. जिनके अंदर माया का मोह समाया हुआ है, चाहे लाखों बार हवा की रफ़्तार से किसी मन चाहे नाम का सुमिरन करते रहें, वे सच्चे पारमार्थिक लाभ से वंचित ही रहेंगे। गुरु साहिब सावधान करते हैं:

राम राम सभ को कहै कहिऐ राम न होए॥
गुर परसादी राम मन वसै ता फल पावै कोए॥[141]

मनमर्ज़ी के किसी भी नाम का जाप करते रहने से परमेश्वर के साथ मिलाप नहीं हो सकता। परमेश्वर के साथ जब भी मिलाप होता है, केवल सतगुरु के उपदेशानुसार लिव अंदर सच्चे नाम से जोड़ने से होता है।

गुरु साहिब की वाणी है:

रसना नाम सभ कोई कहै॥ सतिगुर सेवे ता नाम लहै॥
बंधन तोड़े मुकत घर रहै॥ गुर सबदी असथिर घर बहै॥[142]

जिह्वा द्वारा मनमर्ज़ी के नाम का जाप तो सभी करते हैं। परमेश्वर के साथ मिलानेवाले सच्चे नाम का भेद केवल पूरे गुरु से ही प्राप्त हो सकता है। जो साधक सतगुरु के उपदेशानुसार मन को अंतर में स्थिर करके सच्चे नाम के साथ जोड़ लेता है, केवल वही मुक्ति प्राप्त कर सकता है। ऐसे साधक को परमेश्वर के धाम में पहुँचने की बड़ाई प्राप्त हो जाती है।

कहै नानक सतिगुरू बाझहो होर कची बाणी॥– गुरु साहिब फिर ज़ोर देकर कहते हैं कि पूरे सतगुरु की पूरी वाणी के बिना भवसागर से पार नहीं उतरा जा सकता। इसलिये तुम अधूरे गुरु के अधूरे उपदेश की ओर से ध्यान हटाकर पूरे गुरु के उपदेशानुसार परमेश्वर की भक्ति में लगो।

गुर का सबद रतंन है हीरे जित जड़ाउ॥
सबद रतन जित मंन लागा एहो होआ समाउ॥
सबद सेती मन मिलिआ सचै लाइआ भाउ॥
आपे हीरा रतन आपे जिस नो दे बुझाए॥
कहै नानक सबद रतन है हीरा जित जड़ाउ॥ २५॥

जड़ाउ=जड़ित; **समाउ**=समाना।

सरलार्थ: गुरु के प्यारे शिष्यो! गुरु का शब्द अमूल्य हीरा है, गुरु का शब्द हीरों से जड़ित है। शब्द ऐसा अमूल्य रत्न है कि मन उससे जुड़कर उसमें ही समा जाता है। जब मन शब्द में लीन हो जाता है तो इसमें सच्चे हरि का प्रेम पैदा हो जाता है। वह प्रभु स्वयं अमूल्य रत्न है। वह जिसको अपना मिलाप बख़्शना चाहता है उसे स्वयं ही अपनी पहचान करवाता है। गुरु साहिब कहते हैं: शब्द अमूल्य रत्न है, शब्द हीरों से जड़ा हुआ है।

❖ ***गुर का सबद रतंन है हीरे जित जड़ाउ॥***
सबद रतन जित मंन लागा एहो होआ समाउ॥
सबद सेती मन मिलिआ सचै लाइआ भाउ॥
आपे हीरा रतन आपे जिस नो दे बुझाए॥

गुरु साहिब ने तेईसवीं पउड़ी में 'सची वाणी' को सच्चे शब्द के अर्थों में प्रयोग किया है। आप उसी विषय पर कहते हैं: गुरु का शब्द हीरों से जड़ा हुआ अमूल्य रत्न है। जिस शिष्य को यह शब्द प्यारा लगता है, उसका मन उसी में समा जाता है। जिसका मन शब्द में लीन हो जाता है, उसके अंदर प्रभु प्रेम हिलोर लेने लगता है।

आपे हीरा रतन आपे– गुरु साहिब समझाते हैं कि शब्द और प्रभु, दो नहीं हैं। प्रभु को अमूल्य हीरा कहो या शब्द को अमूल्य रत्न कहो, दोनों में कोई अंतर नहीं है। प्रभु शब्द रूप है और शब्द प्रभु का रूप है। गुरु साहिब वाणी के अन्य प्रसंगों में शब्द और प्रभु की समानता का भाव इस तरह से प्रकट करते हैं:

एको सबद एको प्रभ वरतै सभ एकस ते उतपत चलै॥
नानक गुरमुख मेल मिलाए गुरमुख हर हर जाए रलै॥[143]

तुध आपे सिसट सिरजिआ आपे फुन गोई॥
सभ इको सबद वरतदा जो करे सो होई॥[144]

जिस नो दे बुझाए– शब्दरूपी हीरे की सूझ प्रभु की दया से होती है। जिस पर वह दयालु दाता रहमत करता है, उसी को इस अमूल्य रत्न की प्राप्ति होती है।

कहै नानक सबद रतन है हीरा जित जड़ाउ– आप फिर उसी बात पर ज़ोर देते हैं कि शब्द अमूल्य धन है। आप बार-बार शब्द की महिमा करते हैं, क्योंकि केवल शब्द ही प्रभु प्राप्ति का एकमात्र सच्चा साधन है। आपकी वाणी है:

सचै सबद सची पत होई॥ बिन नावै मुकत न पावै कोई॥
बिन सतिगुर को नाउ न पाए प्रभ ऐसी बणत बणाई हे॥[145]

आप फ़रमाते हैं कि उस प्रभु ने स्वयं यह नियम यानी विधान बना दिया है कि सतगुरु के बिना शब्द का अनुभव नहीं हो सकता और उसके बिना मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

सिव सकति आप उपाए कै करता आपे हुकम वरताए॥
हुकम वरताए आप वेखै गुरमुख किसै बुझाए॥
तोड़े बंधन होवै मुकत सबद मंन वसाए॥
गुरमुख जिस नो आप करे सो होवै एकस सिउ लिव लाए॥
कहै नानक आप करता आपे हुकम बुझाए॥ २६॥

सिव=चेतन सुरत, आत्मा; **सकति**=जड़ माया।

सरलार्थ: वह कर्तापुरुष चेतन जीवात्मा और जड़ माया, दोनों को पैदा करके स्वयं ही अपने हुक्म का प्रसार करता है। वह अपना हुक्म चलता देखकर प्रसन्न होता है। वह किसी विरले भाग्यशाली जीव को गुरु द्वारा इस खेल की समझ बख़्श देता है। वह ऐसे जीव के अंदर शब्द बसा देता है जिससे वह माया के बंधन तोड़कर मुक्ति प्राप्त करने में सफल हो जाता है। जिसे वह प्रभु सामर्थ्य प्रदान करता है, वही सतगुरु के बताये मार्ग पर चल सकता है और वही माया से ध्यान निकालकर एक प्रभु के साथ लिव जोड़ सकता है। गुरु साहिब कहते हैं: जो कुछ करता है, वह कर्तापुरुष ही करता है और अपने हुक्म की सूझ भी वह स्वयं ही बख़्शता है।

❖ ***सिव सकति आप उपाए कै करता आपे हुकम वरताए॥***
हुकम वरताए आप वेखै गुरमुख किसै बुझाए॥
तोड़े बंधन होवै मुकत सबद मंन वसाए॥

गुरु साहिब द्वारा शब्द की महिमा सुनकर मन में प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब शब्द हरेक के अंदर है, तो सब लोग शब्द के साथ लिव जोड़कर प्रभु के साथ मिलाप क्यों नहीं कर लेते? गुरु साहिब समझाते हैं कि यह रचना प्रभु के हुक्म का खेल है। उस कर्ता ने अपनी रज़ा द्वारा यहाँ दो शक्तियाँ उत्पन्न की हैं – एक चेतन आत्मा (शिव) और दूसरी जड़ माया (शक्ति)। चेतन आत्मा, प्रभु की तरफ़ जाना चाहती है पर जड़ माया, उसे अपनी तरफ़ खींचकर रखना चाहती है। यह खेल भी प्रभु की रज़ा के अनुसार चल रहा है। उस कर्ता द्वारा बनायी सृष्टि और जिस विधान के अनुसार वह सृष्टि को चला रहा है, उसे समझ पाना मनुष्य की पहुँच से परे है। उस कर्ता के हुक्म की समझ उस दाता की दया से गुरुमुखों द्वारा प्राप्त होती है। जिसको कर्ता सृष्टि में आत्मा और माया के बीच चल रहे खेल की समझ देना चाहता है तथा जिन्हें इस द्वंद्व से मुक्त करना चाहता है, गुरुमुखों द्वारा उनके मन में शब्द बसा देता है।

गुरमुख जिस नो आप करे सो होवै एकस सिउ लिव लाए ॥– संसार के सब लोग माया के मोह में फँसे हुए हैं। उनके अंदर दुनियावी शक्लों -पदार्थों का मोह घर कर चुका है। वे इंद्रियों के भोगों, विषय-विकारों की लज़्ज़तों में लिप्त हैं। उनकी लिव माया के साथ लगी हुई है। ऐसे मनमुख मायामय जगत् का अंग बन कर रह जाते हैं। जिन भाग्यशाली जीवों को कर्तापुरुष माया के मोह से मुक्त करना चाहता है, उन्हें वह अपने शब्द के साथ जोड़कर गुरुमुख बना लेता है। वे अनेकता के मोह से मुक्त होकर एक प्रभु के प्रेम के रंग में रँग जाते हैं।

कहै नानक आप करता आपे हुकम बुझाए– जो कुछ करता है, वह कर्ता स्वयं करता है। संसार का कोई जीव न तो अपनी चतुराई से रचना की पहेली बूझ सकता है, न अपने बल-बुद्धि द्वारा द्वैत से मुक्त हो सकता है और न ही मनमर्ज़ी की भक्ति द्वारा प्रभु के साथ मिलाप कर सकता है। गुरु नानक साहिब का कथन है:

हुकमी सभे ऊपजह हुकमी कार कमाहे ॥
हुकमी कालै वस है हुकमी साच समाहे ॥
नानक जो तिस भावै सो थीऐ इना जंता वस किछ नाहे ॥[146]

सारी सृष्टि सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञाता, एक प्रभु के हुक्म का खेल है और उसके हुक्म के अनुसार चल रही है। प्रभु के हुक्म की सर्वव्यापकता की समझ, प्रभु के साथ मिलाप करके आती है और प्रभु के साथ मिलाप की बड़ाई उसके हुक्म द्वारा प्राप्त होती है।

सिम्रिति सासत्र पुंन पाप बीचारदे ततै सार न जाणी ॥
ततै सार न जाणी गुरू बाझहो ततै सार न जाणी ॥
तिही गुणी संसार भ्रम सुता सुतिआ रैण विहाणी ॥
गुर किरपा ते से जन जागे
जिना हर मन वसिआ बोलह अंम्रित बाणी ॥
कहै नानक सो तत पाए
जिस नो अनदिन हर लिव लागै जागत रैण विहाणी ॥ २७ ॥

ततै=प्रभुरूपी सारपदार्थ।

सरलार्थ: स्मृतियाँ और शास्त्र, पुण्यों और पापों के बारे में उपदेश देते हैं, परंतु यह प्रभुरूपी सारपदार्थ के बारे में सच्चा ज्ञान नहीं दे सकते। गुरु के बिना प्रभुरूपी सारपदार्थ का ज्ञान नहीं मिल सकता। संसार के सब लोग तीन गुणों – सतो, रजो, तमो – के भ्रम या अज्ञान की नींद में सोये हुए हैं। उनकी आयु इस नींद में ही व्यतीत हो जाती है। गुरु की कृपा से इस नींद से केवल वही जागते हैं जिनके मन में हरिरूपी सत्य बस जाता है और जो अमृतरूपी वाणी जपते हैं। गुरु साहिब कहते हैं: सारपदार्थ उनको प्राप्त होता है जिनकी लिव दिन-रात हरि के साथ लगी रहती है और जिनकी आयु सत्य के ज्ञान में जागते हुए व्यतीत होती है।

❖ ***सिम्रिति सासत्र पुंन पाप बीचारदे ततै सार न जाणी ॥***
ततै सार न जाणी गुरू बाझहो ततै सार न जाणी ॥

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि स्मृतियों और शास्त्रों में पुण्यों और पापों का वर्णन किया गया है। उनमें पाप त्यागकर पुण्य करने का उपदेश दिया गया है पर उनकी प्रभुरूपी परमतत्त्व तक पहुँच नहीं है। प्रभुरूपी सारपदार्थ या परम सत्य की समझ केवल उस पूर्ण गुरु से प्राप्त हो सकती है जो परम सत्य में समाकर उसका रूप हो चुका हो।

संसार के अधिकतर लोग इस भ्रम का शिकार हैं कि पापों को त्यागकर पुण्य कमाने से पिछले पापों का नाश हो जायेगा तथा प्रभु के साथ मिलाप हो जायेगा। गुरु साहिब इस गूढ़ सत्य पर प्रकाश डाल रहे हैं कि पुण्य कर्म, पापों का नाश नहीं कर सकते। पाप, पापों के और पुण्य, पुण्यों के खाते में जमा हो जाते हैं। पुण्य कर्म द्वारा इस संसार के ऊँचे से ऊँचे और अधिक से अधिक सुख मिल सकते हैं। इनसे स्वर्ग और बैकुंठ के सुख भी मिल सकते हैं, परंतु पुण्यों का फल समाप्त हो जाने पर फिर इस मृत्युलोक में भाव पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ता है। पाप लोहे की बेड़ियाँ हैं तो पुण्य सोने की बेड़ियाँ हैं, क्योंकि दोनों प्रकार के कर्मों के भुगतान के लिये जीवात्मा चौरासी के चक्कर में बँधी रहती है।

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

त्रै गुण धात बहु करम कमावह हर रस साद न आइआ॥
संधिआ तरपण करह गाइत्री बिन बूझे दुख पाइआ॥[147]

आप कहते हैं कि अनेक तरह के पुण्य कर्म जीवात्मा को तीनों गुणों की सीमा से पार नहीं ले जा सकते। जब तक शब्द यानी नाम का अमृत प्राप्त नहीं होता, तब तक सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता और भवसागर के दुःखों से छुटकारा नहीं हो सकता।

तिही गुणी संसार भ्रम सुता सुतिआ रैण विहाणी॥
गुर किरपा ते से जन जागे
जिना हर मन वसिआ बोलह अंम्रित बाणी॥

गुरु साहिब सावधान करते हैं कि सारा संसार त्रिगुणात्मक माया द्वारा पैदा किये भ्रम की मीठी नींद में सोया हुआ है। त्रिलोकी की सारी रचना नश्वर है, परंतु माया इसके सत्य होने का भ्रम पैदा कर देती है। जीवात्मा सांसारिक शक्लों और पदार्थों को सत्य समझकर इनके मोह में फँस जाती है। माया के प्रभाव के कारण यह अपने वास्तविक देश को भूल जाती है। यह प्रभुरूपी सत्य के साथ जुड़ने के बजाय, मिथ्या शक्लों और पदार्थों के मोह में फँसकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गँवा देती है। इनसान अज्ञान की नींद में सोया हुआ ही जन्म लेता है और अज्ञान की नींद में सोया हुआ ही जीवन व्यतीत करके यहाँ से ख़ाली हाथ वापस चला जाता है।

गुरु साहिब सावधान करते हैं कि सारा संसार तीन गुणों की सीमा में क़ैद है। धर्म ग्रंथों में रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण, तीन गुणों का उल्लेख है। रजोगुण भाग-दौड़, अधिक से अधिक उन्नति करने आदि का उत्साह पैदा करता है। तमोगुण आलस्य, निद्रा, क्रोध, ईर्ष्या आदि पैदा करता है। सतोगुण विवेक, त्याग, शांति, क्षमा आदि गुण पैदा करता है। संसार का हर इनसान हर समय किसी न किसी गुण के अधीन कार्य करता है। इन तीनों गुणों से ऊपर की अवस्था को 'सहज' कहा जाता है। सारी त्रिलोकी तीनों गुणों का स्थूल और सूक्ष्म प्रसार है। जब तक जीवात्मा तीनों गुणों की त्रिलोकी में क़ैद है,

वह अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव से गुज़रती रहती है। पूर्ण स्थिरता केवल तीनों गुणों की सीमा पार करके चौथे पद में पहुँचकर प्राप्त होती है। चौथे पद में माया लेशमात्र भी नहीं है। माया में द्वैत और परिवर्तन है। चौथा पद पूर्ण अद्वैत का अचल धाम है। इसलिये गुरु साहिब साधक को तीनों गुणों की अवस्था से ऊपर उठने का उपदेश देते हैं।

गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

त्रिह गुण मह वरतै संसारा॥ नरक सुरग फिर फिर अउतारा॥[148]

कबीर साहिब का कथन है:

रज गुण तम गुण सत गुण कहिऐ इह तेरी सभ माइआ॥
चउथे पद कउ जो नर चीन्है तिन्ह ही परम पद पाइआ॥[149]

गुरु अमरदास जी ने अपने शब्द 'माइआ मोह मैरै प्रभ कीना आपे भरम भुलाए'[150] में प्रभु के हुक्म से तीनों गुणों की त्रिलोकी में व्याप्त माया के प्रसार का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। आप इस शब्द में कहते हैं:

माइआ विच सहज न ऊपजै माइआ दूजै भाए॥
मनमुख करम कमावणे हउमै जलै जलाए॥
जंमण मरण न चूकई फिर फिर आवै जाए॥
त्रिह गुणा विच सहज न पाईऐ त्रै गुण भरम भुलाए॥
पड़ीऐ गुणीऐ किआ कथीऐ जा मुंढहो घुथा जाए॥
चउथे पद मह सहज है गुरमुख पलै पाए॥[151]

कहै नानक सो तत पाए जिस नो अनदिन हर लिव लागै जागत रैण विहाणी॥– जिन भाग्यशाली जीवों को सतगुरु शब्द यानी नाम के साथ जोड़ देता है, उनकी लिव दिन-रात प्रभु के साथ लगी रहती है। उन्हें प्रभुरूपी परमतत्त्व की सूझ हो जाती है। उनका मनुष्य जन्म अज्ञानता की नींद में सोये हुए नहीं, ज्ञान के प्रकाश में जागते हुए व्यतीत होता है। ऐसे भाग्यशाली जीव मनुष्य जन्म का वास्तविक लाभ उठाकर ख़ुशी-ख़ुशी निज घर वापस पहुँचकर परम सुख के अधिकारी बन जाते हैं।

माता के उदर मह प्रतिपाल करे सो किउ मनहो विसारीऐ॥
मनहो किउ विसारीऐ एवड दाता जो अगन मह आहार पहुचावए॥
ओस नो किहु पोह न सकी जिस नउ आपणी लिव लावए॥
आपणी लिव आपे लाए गुरमुख सदा समालीऐ॥
कहै नानक एवड दाता सो किउ मनहो विसारीऐ॥ २८॥

सरलार्थ: मेरे प्यारो! विचार करके देखो कि जो प्रभु माता के पेट में जीव का पालन-पोषण करता है, उसे मन से क्यों भुलाया जाये? ऐसे बड़े दाता को मन से क्यों बिसारा जाये जो माता के पेट की जठराग्नि में भी जीव को भोजन पहुँचाता है? जिस जीव की लिव प्रभु अपने साथ जोड़ लेता है, उसे कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता। वह अपनी लिव स्वयं ही लगाता है। हमें सतगुरु द्वारा सदैव उसके साथ जुड़े रहना चाहिये। ऐसे महान् दाता को किसी भी हालत में मन से नहीं बिसारना चाहिये।

❖ ***माता के उदर मह प्रतिपाल करे सो किउ मनहो विसारीऐ॥***
मनहो किउ विसारीऐ एवड दाता जो अगन मह आहार पहुचावए॥

गुरु साहिब बार-बार जीव को परमेश्वर की भक्ति करने की प्रेरणा देते हैं। आप इस प्रसंग में समझाते हैं कि परमेश्वर तुम्हारा कर्ता ही नहीं, रक्षक और प्रतिपालक भी है। ऐसे परम दयालु और सबसे महान् दाता तथा रक्षक को तो पलभर के लिये भी मन से नहीं बिसारना चाहिये।

ओस नो किहु पोह न सकी जिस नउ आपणी लिव लावए॥– गुरु साहिब समझाते हैं कि जो अपनी लिव प्रभु के साथ जोड़ लेता है, बड़ी से बड़ी विरोधी शक्ति भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

ताती वाउ न लगई पारब्रहम सरणाई॥
चउगिरद हमारै राम कार दुख लगै न भाई॥[152]

आपणी लिव आपे लाए गुरमुख सदा समालीऐ॥– गुरु साहिब कहते हैं कि जीव बेबस और निर्बल है। यह इतनी बुरी तरह से दुनियावी तृष्णाओं का

शिकार हो चुका है और इस सीमा तक मन और इंद्रियों के अधीन हो चुका है कि प्रभु स्वयं ही दया करके इसकी लिव अपने साथ जोड़े तो जोड़े, नहीं तो इस निर्बल अज्ञानी जीव के बचाव का कोई रास्ता नहीं। गुरु साहिब उपदेश देते हैं: *गुरमुख सदा समालीऐ*– भाई! गुरुमुखों की सहायता से, मालिक के भक्तों और प्यारों के उपदेशानुसार अपनी लिव सदैव राम-नाम के साथ जोड़कर रखनी चाहिये। यही जीव के बचाव का एकमात्र सच्चा साधन है।

कहै नानक एवड दाता सो किउ मनहो विसारीऐ॥– गुरु साहिब फिर ज़ोर देकर कहते हैं: भाई! उस बड़े से बड़े, दयालु दाता, रक्षक और प्रतिपालक को कभी पलभर के लिये भी मन से नहीं बिसारना चाहिये। उसे मन से बिसार देना, अपने लिये नरकों का द्वार खोलने और उसके साथ लिव जोड़कर रखना अपने-आपको परम सुख का अधिकारी बना लेने के समान है।

जैसी अगन उदर मह तैसी बाहर माइआ॥
माइआ अगन सभ इको जेही करतै खेल रचाइआ॥
जा तिस भाणा ता जंमिआ परवार भला भाइआ॥
लिव छुड़की लगी त्रिसना माइआ अमर वरताइआ॥
एह माइआ जित हर विसरै मोह उपजै भाउ दूजा लाइआ॥
कहै नानक गुर परसादी जिना लिव लागी
तिनी विचे माइआ पाइआ॥ २९॥

भला भाइआ=प्यारा लगा; **छुड़की**=टूट गयी; **अमर**=हुक्म।

सरलार्थ: जिस तरह माता के पेट में जठराग्नि होती है, उसी तरह बाहरी संसार में मायारूपी अग्नि है। बाहरी मायावी अग्नि और जठराग्नि में कोई अंतर नहीं। यह कर्तापुरुष का अपना रचाया हुआ खेल है। जब कर्ता की रज़ा हुई तो जीव ने माता के पेट की अग्नि से बाहरी संसार (मायारूपी अग्नि) में जन्म ले लिया और इसे अपना परिवार प्यारा लगना शुरू हो गया। जब इसने संसार में जन्म लिया तो इसकी अकालपुरुष से लिव टूट गयी। यह माया के हुक्म के अधीन हो गया,

जिसके कारण इसके अंदर दुनियावी पदार्थों की तृष्णा पैदा हो गयी। यह माया का ही प्रभाव है जिसके कारण यह हरि को भुला देता है और इसके अंदर सांसारिक शक्लों और पदार्थों का मोह पैदा हो जाता है। गुरु साहिब समझाते हैं: सतगुरु की कृपा से जिनकी लिव प्रभु के साथ लग जाती है, उनका माया में रहते हुए भी हरि के साथ मिलाप हो जाता है।

❖ ***जैसी अगन उदर मह तैसी बाहर माइआ॥***
माइआ अगन सभ इको जेही करतै खेल रचाइआ॥

पिछली पउड़ी में गुरु साहिब ने जीवात्मा को उपदेश दिया था कि तू माता के गर्भ में रक्षा और प्रतिपालन करनेवाले प्रभु को सदा याद रख। आप उपदेश के क्रम को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि जिस तरह माता के पेट में जठराग्नि प्रचंड थी, उसी प्रकार बाहरी जगत् में माया की अग्नि प्रचंड है। यह उस कर्ता का अजीब खेल है कि दोनों तरह की अग्नि देखने में अलग-अलग प्रतीत होती है, परंतु वास्तव में एक ही है।

जा तिस भाणा ता जंमिआ परवार भला भाइआ॥
लिव छुड़की लगी त्रिसना माइआ अमर वरताइआ॥

गुरु साहिब कहते हैं कि जब मालिक के हुक्म से जीव माता के गर्भ से बाहर आता है, तो इसे परिवार के सदस्य प्यारे लगने लगते हैं। इसकी नाम से लिव टूट जाती है तथा सांसारिक शक्लों और पदार्थों की प्राप्ति की तृष्णा जाग उठती है। गुरु साहिब 19 वीं पउड़ी में समझा आये हैं। '*एह तिसना वडा रोग लगा मरण मनहो विसारिआ॥*' – आप उसी भाव का विस्तार करते हुए कहते हैं: *माइआ अमर वरताइआ* – अमर का अर्थ है हुक्म या प्रभाव। गुरु साहिब कहते हैं कि बाहरी जगत् में आते ही जीवात्मा पर माया का जादू चल गया। यह प्रभुरूपी सत्य को भूल गयी और इसे झूठा जगत् और इसकी झूठी शक्लें और पदार्थ सत्य प्रतीत होने लगे। न इसे प्रभु के साथ अपने संबंध की याद रही, न अपने वास्तविक घर की और न ही प्रभुरूपी सच्चे रक्षक और प्रतिपालक की

सुध-बुध रही। इसे यह ज्ञान भी न रहा कि माया की अग्नि, इच्छाओं की पूर्ति के ईंधन से नहीं, नाम के अमृत से शांत होती है। इसने अज्ञानतावश, अधिक से अधिक तृष्णाएँ पूरी करने का प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि तृष्णाओं की अग्नि और अधिक प्रचंड होती गयी और जीवात्मा इस कभी न बुझनेवाली अग्नि में जलती रही। गुरु साहिब वाणी के दूसरे प्रसंग में कहते हैं:

त्रिसना अगन जलै संसारा॥ जल जल खपै बहुत विकारा॥[153]

एह माइआ जित हर विसरै मोह उपजै भाउ दूजा लाइआ॥ – अब गुरु साहिब माया के गुण, कर्म और स्वभाव पर प्रकाश डालते हैं। चिरकाल से पारमार्थिक साहित्य में माया का विवेचन किया जा रहा है। शायद ही किसी दूसरी जगह गुरु साहिब की तरह सुंदर, सारगर्भित और भावपूर्ण ढंग से माया के पूर्ण प्रसार का उल्लेख किया गया हो। *एह माइआ जित हर विसरै* – माया का पहला कार्य प्रभु की याद भुलाना है। *मोह उपजै भाउ दूजा लाइआ* – इसका दूसरा कार्य मन में दुनियावी शक्लों और पदार्थों का मोह पैदा करना है।

प्रकाश का न होना ही अँधेरा है। ज्ञान का न होना ही अज्ञान या अविद्या है। इसलिये माया को अंधकार, अविद्या या भ्रम भी कहा गया है। सत्य का न होना ही झूठ है। इसलिये माया को झूठ या छल-कपट भी कहा गया है। सत्य वह है जो सदा एक रस, एक रंग और एक रूप रहता है। सत्य न कभी बदलता है और न ही कभी नष्ट होता है। ऐसा एकमात्र सत्य वह प्रभु है। जो सदा बदलता रहता है, जो अंत में नाश हो जाता है, वह झूठ है। एक प्रभु को छोड़कर दूसरी हर चीज़ प्रति क्षण बदलती रहती है तथा समय पाकर नष्ट हो जाती है। जो परिवर्तनशील है जो काल का ग्रास है – माया की रचना है। जो सृजन से बँधा हुआ है, उसका संबंध सृजनहार से टूटा रहता है। रचना नश्वर है। इसलिये इससे कभी भी पूर्ण और अविनाशी सुख नहीं मिल सकता। ऐसा सुख तो केवल पूर्ण और अविनाशी प्रभु के साथ जुड़ने पर ही मिल सकता है। गुरु साहिब हमें संसार की वास्तविकता के बारे में सावधान करते हैं तथा माया के पैदा किये भ्रमजाल को तोड़कर प्रभु के साथ मिलाप करने का उपदेश देते हैं।

धर्म ग्रंथों में माया की दो शक्तियाँ मानी गयी हैं: आवरणमयी और विक्षेपमयी। आवरणमयी शक्ति सत्य पर परदा डाल देती है, जैसे बादल सूर्य को ढक लेते हैं। विक्षेपमयी शक्ति झूठ के सत्य और सत्य के झूठ होने का भ्रम पैदा करती है, जैसे धूप में चमक रही रेत, पानी होने का भ्रम पैदा करती है।

धर्म ग्रंथों में माया दो प्रकार की मानी गयी हैं: जड़ और चेतन। जीव रहित रचना जड़ माया है। जीवधारी आकार चेतन माया है। धरती, महल, बँगले, सोना-चाँदी, हीरे-मोती, पर्वत आदि जड़ माया हैं। पेड़-पौधे, कीट-पतंगे, पशु-पक्षी, नर-नारियाँ, बेटे-बेटियाँ, पति-पत्नी, मित्र-संबंधी सब चेतन माया हैं।

गुरु अर्जुन देव जी ने अपने शब्द '*बहु रंग माइआ बहु बिध पेखी*' द्वारा माया के बहुरंगी प्रसार का विस्तृत चित्र खींचा है:

> बहु रंग माइआ बहु बिध पेखी॥ कलम कागद सिआनप लेखी॥
> महर मलूक होए देखिआ खान॥ ता ते नाही मन त्रिपतान॥
> सो सुख मो कउ संत बतावहो॥ त्रिसना बूझै मन त्रिपतावहो॥
> अस पवन हसत असवारी॥ चोआ चंदन सेज सुंदर नारी॥
> नट नाटिक आखारे गाइआ॥ ता मह मन संतोख न पाइआ॥
> तखत सभा मंडन दोलीचे॥ सगल मेवे सुंदर बागीचे॥
> आखेड़ बिरत राजन की लीला॥ मन न सुहेला परपंच हीला॥[154]

राजपाट, ऊँचे पद, घोड़े, हाथी, इत्र, सुंदर स्त्रियाँ, नाटक-तमाशे, राग-रंग की महफ़िलें, तख़्तो-ताज, महल-बँगले, राजदरबार के अनेक प्रकार के सजावटी सामान, शिकार, मनोरंजन के अनेक प्रकार के राजाओं और महाराजाओं के खेल आदि सब माया का प्रपंच हैं। इनसे कभी भी मन को स्थायी शांति प्राप्त नहीं हो सकती।

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

> माइआ मोह हर चेतै नाही॥ जमपुर बधा दुख सहाही॥
> अंना बोला किछ नदर न आवै मनमुख पाप पचावणिआ॥[155]

माया के मोह में ग्रस्त अंधा-बहरा जीव, भले-बुरे, ठीक-ग़लत की पहचान नहीं कर सकता। वह मनचाहे कर्मों में उलझ जाता है जिसके कारण यमपुरी में पहुँचकर दु:ख भोगता है।

चाहे जड़ पदार्थ हों या चेतन, सब प्राणियों के शरीर नश्वर हैं। माया इनके सत्य और स्थायी होने का भ्रम पैदा करती है। आत्मा और परमात्मा अविनाशी हैं, परंतु शरीर और जगत् के मायावी परदे के कारण, वे दिखायी नहीं देते। माया के प्रभाव के कारण इनसान अपना अस्तित्व शरीर तक सीमित समझना शुरू कर देता है तथा आत्मा के प्रभु के साथ संबंध की ओर से अचेत हो जाता है। इस तरह उसका संबंध प्रभु से टूटकर संसार के साथ बँध जाता है।

इनसान संसार की शक्लों-पदार्थों के मोह और इच्छाओं की पूर्ति के लिये अनेक कर्म करता है जो उसे फल भोगने की मजबूरी से बाँध देते हैं। कर्मों का फल भोगने के लिये वह आवागमन के बंधन से बँध जाता है।

संत-महात्माओं ने माया को द्वैत, अविद्या, अज्ञानता, भ्रम, छल और जादू भी कहा है। इसे ठगिनी, जादूगरनी और सर्पिणी भी कहा गया है। उनका उद्देश्य किसी भी तरह से जीव को माया के विषैले प्रभाव के बारे में सचेत करके, प्रभुरूपी सत्य की ओर चलने की प्रेरणा देना है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

> सरपनी ते ऊपर नही बलीआ॥ जिन ब्रहमा बिसन महादेउ छलीआ॥[156]
>
> इह स्रपनी ता की कीती होई॥ बल अबल किआ इस ते होई॥[157]

माया का खेल प्रभु ने स्वयं रचाया है। सारी त्रिलोकी में इसका डंका बज रहा है। निर्बल और सबल सभी इसके आगे विवश हैं।

गुरु साहिब इस महत्त्वपूर्ण रहस्य की ओर संकेत कर रहे हैं कि माया का पसारा प्रभु की मौज से चल रहा है। यह बात समझनी मुश्किल नहीं है कि यदि सभी जीव प्रभु के साथ एकदम प्रेम करना शुरू कर देंगे तो वे सभी प्रभु में वापस समा जायेंगे। परिणाम यह होगा कि सारा संसार ख़ाली हो जायेगा और यहाँ जड़ माया* के सिवाय अन्य कुछ भी बाक़ी नहीं रहेगा। जब तक प्रभु इस

* दो प्रकार की माया है, जड़ माया और चेतन माया।

नाटक को चलाना चाहता है, इसमें माया का पसारा आवश्यक है। हालाँकि नाटक असत्य ही होता है, परंतु देखनेवालों को सत्य प्रतीत होता है। इसी तरह से रचना तो माया का नाटक या प्रपंच है, परंतु इसका सत्य प्रतीत होना स्वाभाविक है। नाटक में पात्र की भूमिका नाटककार निर्धारित करता है। किस पात्र को कब रंगमंच पर आना है और कब किसे वापस जाना है, इसका निर्णय पात्र नहीं, नाटककार करता है। रचना के मायामय नाटक से आज़ाद हो जाना जीवात्मा के वश में नहीं, प्रभु के हाथ में है। इसलिये गुरु साहिब कहते हैं: ***गुर परसादी जिना लिव लागी तिनी विचे माइआ पाइआ॥***– जब जीव सतगुरु के उपदेशानुसार नाम के साथ लिव जोड़ लेता है, तो मायामय नाटक का भाग होते हुए भी इसके विषैले प्रभाव से मुक्त हो जाता है। वह शरीर के कारण मायामय रचना का भाग अवश्य होता है, परंतु उसकी आत्मा प्रभुरूपी सत्य में समाकर उसका रूप हो जाती है।

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

माइआधारी अत अंना बोला॥ सबद न सुणई बहु रोल घचोला॥
गुरमुख जापै सबद लिव लाए॥ हर नाम सुण मंने हर नाम समाए॥[158]

गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

नानक सतिगुर भेटिऐ पूरी होवै जुगत॥
हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ खावंदिआ विचे होवै मुकत॥[159]

आप कहते हैं कि पूरे सतगुरु की पूर्ण युक्ति को अपनाने से इनसान संसार में रहता हुआ भी माया से अलिप्त रहता है। गुरु अमरदास जी *गुर परसादी जिना लिव लागी तिनी विचे माइआ पाइआ॥* द्वारा यही निर्मल और कल्याणकारी उपदेश दे रहे हैं। आप कहते हैं कि ज़रूरत मायामय जगत् के त्याग की नहीं, अज्ञानता के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश में आने की है। समुद्र को पार करना बहुत कठिन है, परंतु जहाज़ और कप्तान की सहायता से समुद्र को पार करना आसान हो जाता है। जीव को केवल यह समझने का प्रयत्न करना है कि वह अपने बल पर माया के बंधनों से मुक्त नहीं हो सकता।

वह दयालु पिता स्वयं सतगुरु का रूप धारण करके संसार में आता है और अपने निर्बल, भुलक्कड़ बालक को नाम के साथ जोड़कर माया से मुक्त करता है:

अंध कूप ते काढनहारा॥ प्रेम भगति होवत निसतारा॥
साध रूप अपना तन धारिआ॥ महा अगन ते आप उबारिआ॥[160]

हर आप अमुलक है मुल न पाइआ जाए॥
मुल न पाइआ जाए किसै विटहो रहे लोक विललाए॥
ऐसा सतिगुर जे मिलै तिस नो सिर सउपीऐ विचहो आप जाए॥
जिस दा जीउ तिस मिल रहै हर वसै मन आए॥
हर आप अमुलक है भाग तिना के नानका जिन हर पलै पाए॥ ३०॥

विललाए=बिलखना।

सरलार्थ: हरि अमूल्य है। किसी भी मूल्य पर उसे प्राप्त कर पाना असंभव है। लोग विलाप करते हुए मर गये, न कोई उसका मूल्य आँक सका, न कोई उसे मूल्य देकर ख़रीद सका। यदि सच्चा सतगुरु मिल जाये, उसे सिर भेंट किया जाये यानी आपा-भाव नष्ट हो जाये, तभी उस अमूल्य हरि की प्राप्ति हो सकती है। इस तरह से जीव जिस अकालपुरुष का अंश है, उसके साथ मिल जायेगा और इसके अंतर में हरि बस जायेगा। गुरु साहिब फ़रमाते हैं: वह हरि अमूल्य है। वे भाग्यशाली हैं जिन्हें वह प्राप्त हो गया।

❖ ***हर आप अमुलक है मुल न पाइआ जाए॥***
मुल न पाइआ जाए किसै विटहो रहे लोक विललाए॥

गुरु साहिब उपदेश देते हैं: मेरे प्रियजनो! यह भ्रम त्याग दो कि तुम धन-दौलत के बल पर उस अमूल्य हरि को प्राप्त कर लोगे। सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात आदि सब उस हरि के पैदा किये हुए नश्वर पदार्थ हैं। तुम कर्ता द्वारा पैदा की हुई नश्वर वस्तुओं से अविनाशी कर्ता को कैसे ख़रीद सकते हो?

हम पूजास्थलों पर जाकर चढ़ावा चढ़ाते हैं, अनेक प्रकार का दान और पुण्य कर्म करते हैं। प्रभु के दिये धन को प्रभु के जीवों पर ख़र्च करना शुभ कर्म है, परंतु मन में यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि हम धन-दौलत के सहारे प्रभु के साथ मिलाप कर लेंगे।

गुरु नानक साहिब ने अपने शब्द '*राम नाम मन बेधिआ अवर कि करी वीचार॥*'[161] में समझाया है कि थोड़े-बहुत दान की बात तो एक ओर रही, तुम चाहे सोने का किला दान में दे दो; अनगिनत हाथी, घोड़े, गायें दान में दे दो, बेहिसाब धरती दान में दे दो; इससे मन में अहंकार पैदा हो जायेगा। हालाँकि ये शुभ कर्म माने जा सकते हैं जिनसे अच्छा फल भी मिल जायेगा, परंतु उसे भोगने के लिये फिर संसार में आना पड़ेगा, प्रभु के साथ मिलाप नहीं हो पायेगा।

मन में प्रश्न उत्पन्न होता है कि फिर हरि को कैसे प्रसन्न करें? गुरु साहिब उत्तर देते हैं:

ऐसा सतिगुर जे मिलै तिस नो सिर सउपीऐ विचहो आप जाए॥

गुरु साहिब समझाते हैं कि ऐसे सतगुरु की शरण लेनी चाहिये जो हरि का रूप है, ताकि उसके मिलाप से आपा-भाव का नाश हो जाये तथा आत्मा जिस परमात्मा की अंश है, वह हृदय में बस जाये और आत्मा सदा के लिये उसमें समा जाये। मन में फिर प्रश्न उत्पन्न होता है कि ऐसे पूर्ण सतगुरु को कैसे प्रसन्न करें? गुरु साहिब कहते हैं कि जिस तरह धन-दौलत से हम हरि को प्रसन्न नहीं कर सकते, उसी तरह सतगुरु को भी धन-दौलत, ज़मीनों और जायदादों से प्रसन्न नहीं कर सकते। जिस तरह हरि की प्रसन्नता संसार के नश्वर पदार्थों पर आधारित नहीं, उसी तरह सतगुरु की प्रसन्नता भी इन पदार्थों पर आधारित नहीं। सतगुरु की प्रसन्नता किस बात पर आधारित है? ***तिस नो सिर सउपीऐ***– सतगुरु की प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते हो तो अपना शीश उसे भेंट कर दो। मन में संशय उत्पन्न होता है कि शीश भी नश्वर है और नश्वर पदार्थ से सतगुरु को प्रसन्न नहीं किया जा सकता। गुरु साहिब समझाते हैं: *विचहो आप जाए*– मेरे प्यारे! शीश भेंट करने का अर्थ आपा-भाव या मनमत का त्याग है। नवीं पउड़ी में गुरु साहिब ने उपदेश दिया है:

तन मन धन सभ सउप गुर कउ हुकम मंनिऐ पाईऐ॥
हुकम मंनिहो गुरू केरा गावहो सची बाणी॥

नवीं पउड़ी में इन पंक्तियों की विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है कि अपना सर्वस्व सतगुरु को भेंट कर देने का वास्तविक अर्थ अपनी मनमर्ज़ी को पूरी तरह से प्रभु या सतगुरु की रज़ा में मिटा देना है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ॥ सिर धर तली गली मेरी आउ॥
इत मारग पैर धरीजै॥ सिर दीजै काण न कीजै॥[162]

आप कहते हैं: मेरे प्यारे! प्रभु के प्रेम का खेल खेलना चाहते हो तो पहले सिर हथेली पर रख लो। इस मार्ग पर चलना चाहते हो तो सिर क़ुर्बान करने के लिये संकोच न करना। 'सिर' का भाव अहंकार, मैं-मेरी या आपा-भाव है। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि सतगुरु भक्ति या प्रभु भक्ति का आरंभ मनमत यानी अहंकार के त्याग से होता है। जब तक जीवात्मा मनमत त्यागकर तन-मन से सतगुरु के हुक्म का पालन नहीं करती तथा बिना किसी किंतु-परंतु के सतगुरु के उपदेश पर अमल नहीं करती, वह भक्ति के खेल में सफलता की आशा नहीं रख सकती।

जिस दा जीउ तिस मिल रहै हर वसै मन आए॥– पीछे अनेक प्रसंगों में यह चर्चा हो चुकी है कि अपनी आत्मा को हरि में अभेद कर चुका पूर्ण पुरुष ही, हरि का रूप होता है। वह शरीर के कारण ही हरिरूप नहीं होता, वह अपने अंदर प्रकट हो चुके हरि के शब्द के कारण हरि का रूप होता है। गुरु नानक साहिब का कथन है: '*ऐसी सेवक सेवा करै॥ जिस का जीउ तिस आगै धरै॥ साहिब भावै सो परवाण॥ सो सेवक दरगह पावे माण॥*'[163] आत्मा, परमात्मा की अंश है। यह सतनाम समुद्र की बूँद है। प्रभु भक्त का धर्म है कि बूँद को समुद्र में अभेद करके, समुद्र ही बन जाये। वह प्रभु केवल 'जीउ' यानी आत्मा को स्वीकार करता है, वास्तव में वह तो अनंत काल से इस इंतज़ार में है कि जीव अपने-आपको उसमें समाकर उसका रूप हो जाये। इससे जीवात्मा का मनुष्य जन्म का मनोरथ भी पूरा हो जाता है और उसको परमेश्वर के घर में भी शोभा प्राप्त हो जाती है।

हर आप अमुलक है भाग तिना के नानका जिन हर पलै पाए॥– गुरु साहिब उस अमूल्य हरि की प्राप्ति की युक्ति समझाकर अंत में कहते हैं कि धन्य हैं वे जीव, बलिहारी जायें उन भाग्यशाली जीवों पर, जो उस कर्ता की दया से सतगुरु के उपदेश पर चलकर उस सच्चे, निर्मल और अमूल्य हरि में समाकर उसका रूप हो जाते हैं।

हर रास मेरी मन वणजारा॥
हर रास मेरी मन वणजारा सतिगुर ते रास जाणी॥
हर हर नित जपिहो जीअहो लाहा खटिहो दिहाड़ी॥
एह धन तिना मिलिआ जिन हर आपे भाणा॥
कहै नानक हर रास मेरी मन होआ वणजारा॥ ३१॥

रास=पूँजी; **वणजारा**=व्यापारी; **लाहा**=लाभ, फ़ायदा; **भाणा**=प्यारा लगना।

सरलार्थ: वह हरि मेरी पूँजी है और मेरा मन उसका व्यापारी है। इस सच्ची पूँजी की सूझ सतगुरु से प्राप्त होती है। सतगुरु सूझ देता है कि सदा हरि के नाम का जाप करते रहो, तभी तुम्हें मनुष्य जन्मरूपी दिन का वास्तविक लाभ प्राप्त होगा। हरि के नाम का धन केवल उन्हें मिलता है जो उस हरि को स्वयं प्यारे लगते हैं। गुरु साहिब कहते हैं: हरि मेरी पूँजी है और मेरा मन हरि का व्यापारी बन गया है।

❖ ***हर रास मेरी मन वणजारा॥***
हर रास मेरी मन वणजारा सतिगुर ते रास जाणी॥

पिछली पउड़ी में साधक को समझाया गया है कि एकमात्र अमूल्य वस्तु वह हरि है और उसकी प्राप्ति सतगुरु के उपदेशानुसार नाम के साथ लिव जोड़ने से होती है। अब गुरु साहिब साधक की ओर से कहते हैं: मैंने अमूल्य हरि को अपनी पूँजी बना लिया है और मेरे मन ने हरि के नाम का धन एकत्र करना शुरू कर दिया है। यह हरि के नाम की पूँजी मुझे मेरे सतगुरु ने बख़्शी है।

हर हर नित जपिहो जीअहो लाहा खटिहो दिहाड़ी॥– गुरु साहिब प्रेरणा देते हैं: मेरे प्रेमीजनो! सतगुरु से नाम की दात प्राप्त करके उस पर अमल करो।

डॉक्टर से दवाई लेकर उसका प्रयोग करने से ही रोग दूर होता है। पिता द्वारा दुकान में डाली पूँजी का तभी लाभ होता है जब प्रतिदिन ज़्यादा से ज़्यादा उद्यम किया जाये। ऐसे ही तुम सतगुरु से मिली नाम की पूँजी का उचित प्रयोग करो। तुम प्रतिदिन, दिन-रात, साँस-साँस अपनी लिव शब्द या नाम के साथ जोड़कर रखो। जितनी अधिक शब्द (नाम) की कमाई करते जाओगे, उतनी तुम्हारी पूँजी बढ़ती जायेगी तथा उतनी अधिक तुम्हारी आत्मा निर्मल और बलवान् होकर प्रभु के दरबार में स्वीकार होने के योग्य बनती जायेगी।

एह धन तिना मिलिआ जिन हर आपे भाणा॥
कहै नानक हर रास मेरी मन होआ वणजारा॥

यह ठीक है कि प्रभु ने नामरूपी बहुमूल्य धन प्रत्येक जीव के अंदर रखा हुआ है और प्रत्येक जीव में अपने अंदर गुप्त पड़े इस अमूल्य भंडार की प्राप्ति का सामर्थ्य भी है, परंतु सतगुरु तथा नाम दोनों की प्राप्ति मालिक की रज़ा पर निर्भर है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

घर होदै धन जग भुखा मुआ बिन सतिगुर सोझी न होए॥[164]

आप दूसरे प्रसंग में कहते हैं:

निहफल जनम तिन ब्रिथा गवाइआ ते साकत मुए मर झूरे॥
घर होदै रतन पदारथ भूखे भागहीण हर दूरे॥[165]

ए रसना तू अन रस राच रही तेरी पिआस न जाए॥
पिआस न जाए होरत कितै जिचर हर रस पलै न पाए॥
हर रस पाए पलै पीऐ हर रस बहुड़ न त्रिसना लागै आए॥
एह हर रस करमी पाईऐ सतिगुर मिलै जिस आए॥
कहै नानक होर अन रस सभ वीसरे जा हर वसै मन आए॥ ३२॥

अन=अन्य; **करमी**=दया से।

सरलार्थ: हे जिह्वा! तू (हरिरूपी अमृत को छोड़कर) अनेक प्रकार के सांसारिक रसों में रची हुई है। तू भलीभाँति समझ ले कि जब तक

तुझे हरिरूपी सच्चा रस नहीं मिलता, तब तक दूसरी किसी वस्तु से तेरी प्यास नहीं मिट सकती। जब हम हरिरूपी रस को पी लेते हैं, तो फिर किसी दूसरी चीज़ की तृष्णा बाक़ी नहीं रह जाती। यह रस ऊँचे भाग्य से केवल उन्हें मिलता है जिनका सतगुरु से मिलाप हो जाता है। गुरु साहिब कहते हैं: जब हरिरूपी रस मन में बस जाता है तो बाक़ी सब रस भूल जाते हैं।

❖ ***ए रसना तू अन रस राच रही तेरी पिआस न जाए॥***
पिआस न जाए होरत कितै जिचर हर रस पलै न पाए॥

गुरु साहिब ने इकतीसवीं पउड़ी में हरि के नाम का व्यापार करने का संदेश दिया है। अब सावधान करते हैं: हे मेरी जिह्वा! तू हरि के नाम का रस छोड़कर इंद्रियों के भोगों और विषय-विकारों के अनेक प्रकार के रसों में सुख ढूँढ़ने का व्यर्थ प्रयत्न न कर। तू भलीभाँति जान ले कि आत्मा को प्रभु के नाम की प्यास है। नाम की प्यास नाम का रस मिलने से ही शांत हो सकती है। अन्य पदार्थों से इस प्यास का शांत होना मुश्किल ही नहीं, असंभव है। इसलिये तू हरि रस को पीने का प्रयत्न कर। भाई वीर सिंह जी लिखते हैं: मन में नाम का रस रूप होकर टिक जाना हरि रस का पल्ले पड़ना है।[166]

हर रस पाए पलै पीऐ हर रस बहुड़ न त्रिसना लागै आए॥– आप कहते हैं: मेरी जिह्वा! यदि तुझे यह नामरूपी रस मिल जाये और तू इस रस को पी ले, तो न केवल तेरी पिछली तृष्णाएँ शांत हो जायेंगी बल्कि तेरे अंदर फिर कभी किसी सांसारिक पदार्थ की प्यास उत्पन्न नहीं होगी। गुरु अर्जुन देव जी उपदेश देते हैं:

बिखै बन फीका तिआग री सखीए नाम महा रस पीओ॥
बिन रस चाखे बुड गई सगली सुखी न होवत जीओ॥[167]

संत-महात्मा, गुरु साहिबान यह सूक्ष्म रहस्य समझा रहे हैं कि ऐंद्रिय भोग आत्मा की तृप्ति के साधन नहीं हैं। ऐंद्रिय भोग शरीर और मन की तृप्ति के मिथ्या साधन हैं। संपूर्ण आध्यात्मिक विचारधारा का वास्तविक सार यही है

कि मनुष्य के अस्तित्व का आधार शरीर नहीं, आत्मा है। शरीर रथ के समान है, मन इस रथ का घोड़ा है और आत्मा इसकी चालक है। शरीर के पालन के लिये संसार के पदार्थों का भोजन ज़रूरी है, परंतु परम सूक्ष्म और परम चेतन आत्मा का भोजन प्रभु का नाम है।

संत-महात्माओं का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य को शारीरिक भोगों से मिलनेवाले ऐंद्रिय स्वाद और नामरूपी अमृत से मिलनेवाले महारस या परम आनंद का भेद समझाना है। शरीर को स्वस्थ और ठीक रखने के लिये भोजन आवश्यक है। साहित्य, सूक्ष्म कलाएँ, राग-रंग मन के भोजन हैं। उस भोजन का अपना महत्त्व है, परंतु जब तक मनुष्य आत्मा को नामरूपी भोजन नहीं देता, तब तक वह अधूरा है। नाम प्रभु का रूप है। नाम के भोजन द्वारा जीवात्मा प्रभु का रूप हो जाती है। इस समय जीव निर्बलता, अज्ञानता, परिवर्तन, दु:ख और मृत्यु के भय से ग्रसित है। नामरूपी महारस पीकर इसकी आत्मा बलवान् हो जाती है। यह परम ज्ञानी बन जाता है। यह परिवर्तन और विनाश की सीमा लाँघकर अमर जीवन के देश में पहुँच जाता है। फिर यह इस घोर दु:खों की नगरी को पार करके परम आनंद के धाम में पहुँच जाता है। संत-महात्माओं के उपदेश का यह भाव बिल्कुल नहीं है कि शरीर का पालन या साहित्य और कला द्वारा, मन की प्रसन्नता की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। उनका कहने का भाव यह है कि मनुष्य जन्म का वास्तविक उद्देश्य नाम के साथ लिव जोड़कर अपूर्ण से पूर्ण बनना है।

एह हर रस करमी पाईऐ सतिगुर मिलै जिस आए॥– गुरु साहिब ने इकतीसवीं पउड़ी में कहा था कि नामरूपी अमूल्य पूँजी प्रभु की रज़ा के अनुसार सतगुरु से प्राप्त होती है। यहाँ उसी भाव को दूसरे ढँग से बयान करते हुए कह रहे हैं कि अपनी ओर से प्रत्येक जीव हरि रस प्राप्त करना चाहेगा, परंतु इस रस को प्राप्त कर पाना मनुष्य के हाथ में नहीं है। जिस पर वह दयालु दाता दया करता है उसे सतगुरु द्वारा इस अद्भुत रस की दात प्राप्त हो जाती है।

कहै नानक होर अन रस सभ वीसरे जा हर वसै मन आए॥– पहले गुरु साहिब ने 'हर रस' पद का प्रयोग किया था अब, 'हर वसै मन आए' द्वारा संकेत कर रहे हैं कि प्रभु का नाम प्रभु का ही रूप है। जब नाम यानी प्रभु मन

में बस जाता है, तो मन स्वत: ही ऐंद्रिय भोगों और विषय-विकारों से विरक्त होकर नाम के अमृत में सराबोर हो जाता है।

ए सरीरा मेरिआ हर तुम मह जोत रखी ता तू जग मह आइआ॥
हर जोत रखी तुध विच ता तू जग मह आइआ॥
हर आपे माता आपे पिता जिन जीउ उपाए जगत दिखाइआ॥
गुर परसादी बुझिआ ता चलत होआ चलत नदरी आइआ॥
कहै नानक स्त्रिसट का मूल रचिआ
जोत राखी ता तू जग मह आइआ॥ ३३॥

चलत=लीला, नाटक, कौतुक।

सरलार्थ: हे मेरे शरीर! तू भलीभाँति समझ ले कि हरि ने तेरे अंदर अपनी ज्योति रखी, तो तूने संसार में जन्म लिया। वह हरि स्वयं ही माता-पिता है जो जीव को पैदा करके उसे जगत्‌रूपी नाटक दिखाता है। जब गुरु की कृपा द्वारा जीवात्मा को इसका ज्ञान हो गया, फिर इसे जगत् में सब जगह प्रभु की लीला ही नज़र आने लगी। गुरु साहिब कहते हैं: हे मेरे शरीर! जब हरि ने सृष्टि की रचना की और अपनी ज्योति तेरे अंदर रखी, तभी तू जगत् में आया था।

❖ ***ए सरीरा मेरिआ हर तुम मह जोत रखी ता तू जग मह आइआ॥***
हर जोत रखी तुध विच ता तू जग मह आइआ॥

गुरु साहिब कहते हैं: मेरे प्यारे! तू यह बात समझने का प्रयत्न कर कि तू अपने -आप संसार में नहीं आया है। तू उस करतार की रचना है। तू यह समझने का प्रयत्न कर कि तू केवल पाँच तत्त्वों का पुतला नहीं है। उस हरि ने तेरे अंदर अपनी ज्योति भी रखी है। उस परम पिता ने एक विशेष विधि से तेरी रचना की है और तुझे एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये संसार में भेजा है।

हर आपे माता आपे पिता जिन जीउ उपाए जगत दिखाइआ॥– मेरे प्यारे! भलीभाँति समझ ले कि तेरी आत्मा का माता-पिता वह प्रभु है। तू उस प्रभु का

अंश है। तेरा अस्तित्व तुझ तक ही सीमित नहीं है। उस हरि ने तेरे अंदर अपनी ज्योति रखकर तुझे संसार में भेजा है।

गुरु नानक साहिब की वाणी है:

पंच तत मिल काइआ कीनी॥ तिस मह राम रतन लै चीनी॥
आतम राम राम है आतम हर पाईऐ सबद वीचारा हे॥[168]

आप फ़रमाते हैं कि पाँच-तत्त्वों की बनी देही में परमेश्वररूपी रत्न की पहचान कर लेनी चाहिये।

गुर परसादी बुझिआ ता चलत होआ चलत नदरी आइआ॥– जब गुरु की कृपा द्वारा संसाररूपी नाटक की सूझ हुई तो उस कर्ता का खेल देखकर मन विस्मय से भर गया।

कहै नानक स्त्रिसट का मूल रचिआ जोत राखी ता तू जग मह आइआ॥– पिछली पंक्तियों में आप जीवात्मा के मूल के बारे में समझाकर अब कह रहे हैं कि केवल जीवात्मा का ही नहीं, सृष्टि की उत्पत्ति करनेवाली मूल शक्तियों का रचयिता भी वह कर्तापुरुष है।

गुरु साहिब ने छब्बीसवीं पउड़ी में समझाया है: 'सिव सकति आप उपाए कै करता आपे हुकम वरताए॥' अपने विचार को संपूर्णता प्रदान करते हुए गुरु साहिब कहते हैं कि सृष्टि का मूल भी प्रभु ने रचा है, जीवात्मा में अपनी ज्योति भी प्रभु ने रखी है और सृष्टि का सृजन करके प्रभु ने ही जीवात्मा को एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये जगत् में भेजा है।

मन चाउ भइआ प्रभ आगम सुणिआ॥
हर मंगल गाउ सखी ग्रिह मंदर बणिआ॥
हर गाउ मंगल नित सखीए सोग दूख न विआपए॥
गुर चरन लागे दिन सभागे आपणा पिर जापए॥
अनहत बाणी गुर सबद जाणी हर नाम हर रस भोगो॥
कहै नानक प्रभ आप मिलिआ करण कारण जोगो॥ ३४॥

आगम=आने के बारे में; **ग्रिह मंदर**=हृदयरूपी मंदिर; **जोगो**=योग्य, समर्थ।

सरलार्थ: जब प्रभु के आगमन के बारे में सुना तो मन में उत्साह और उमंग पैदा हो गयी। हे सखियो! प्रेम और आनंद के गीत गाओ, क्योंकि हृदयरूपी घर में हरि का निवास हो जाने से यह घर बहुत सुंदर मंदिर बन गया है। हे सखियो! प्रतिदिन हरि के आनंद भरे गीत गाओ। इससे दु:ख, चिंताएँ नहीं सताएँगी। वह दिन भाग्यशाली है, जब ध्यान गुरु चरणों में लगता है और अपना प्रियतम प्रत्यक्ष दिखाई देता है। गुरु के बताये शब्द के अभ्यास द्वारा अंतर में स्थित अनहद वाणी के साथ हमारी लिव जुड़ गयी है और हम हरि नाम के रस का स्वाद ले रहे हैं। गुरु साहिब कहते हैं: हमें वह प्रभु मिल गया है, जो सर्वकला समर्थ तथा सर्वशक्तिमान् है।

❖ ***मन चाउ भइआ प्रभ आगम सुणिआ॥***
हर मंगल गाउ सखी ग्रिह मंदर बणिआ॥

पिछली चार पउड़ियों में गुरु साहिब, हरि के नाम के साथ लिव जोड़ने की आवश्यकता और संसार में मनुष्य देह के सृजन करने के उद्देश्य पर प्रकाश डाल आये हैं। इस पउड़ी में नाम की आराधना द्वारा प्राप्त होनेवाले फल की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि सतगुरु की कृपा द्वारा आत्मा को परमात्मा से मिलाप का विश्वास पैदा होता है तो उसके अंदर प्रेम और चाव भर जाता है। फिर वह दूसरी साधक आत्मारूपी सखियों को कहती है: प्यारी सखियो! उस हरि के आनंद भरे गीत गाओ। देखो नाम के अभ्यास से मेरा हृदयरूपी घर अति सुंदर, सुहावना और शोभनीय हो गया है।

हर गाउ मंगल नित सखीए सोग दूख न विआपए॥
गुर चरन लागे दिन सभागे आपणा पिर जापए॥

प्यारी सखियो! दिन-रात, क्षण-क्षण हरि के आनंद भरे गीत गाओ। इससे सब दु:ख-संताप दूर हो जायेंगे। वह दिन कितना भाग्यशाली था जिस दिन हमें सतगुरु की चरणों में शरण प्राप्त हो गयी, जिसके द्वारा अपने प्रभु प्रियतम के साथ मिलाप हो गया।

अनहत बाणी गुर सबद जाणी हर नाम हर रस भोगो॥
कहै नानक प्रभ आप मिलिआ करण कारण जोगो॥

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि जब सतगुरु की शरण द्वारा अनहद वाणी, अनहद शब्द, हरि नाम यानी हरि रस की प्राप्ति हुई, तो उस सर्वसमर्थ प्रभु के साथ मिलाप का आनंद भरा सौभाग्य प्राप्त हो गया।

गुरु साहिब ने पाँचवीं पउड़ी में अनहद शब्द पद का प्रयोग किया है। यहाँ आप नाम, हरि-रस, शब्द और अनहद वाणी पद समान अर्थों में प्रयुक्त कर रहे हैं। आप वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

हिरदै नाम विचहो आप गवाए॥ अनहद बाणी सबद वजाए॥[169]

अनहद बाणी सबद सुणाइआ॥ मनमुख भूले गुरमुख बुझाइआ॥[170]

आप ने इन प्रसंगों में भी वाणी, अनहत वाणी, अनहद वाणी, गुर शब्द, हरि नाम और प्रभु को समान अर्थों में प्रयुक्त किया है।

ए सरीरा मेरिआ इस जग मह आए कै
किआ तुध करम कमाइआ॥
कि करम कमाइआ तुध सरीरा जा तू जग मह आइआ॥
जिन हर तेरा रचन रचिआ सो हर मन न वसाइआ॥
गुर परसादी हर मंन वसिआ पूरब लिखिआ पाइआ॥
कहै नानक एह सरीर परवाण होआ
जिन सतिगुर सिउ चित लाइआ॥ ३५॥

सरलार्थ: हे मेरे शरीर! यह बता कि तुमने इस संसार में आकर कौन-सा अच्छा काम किया है? जब से तू जगत् में आया है, तूने कौन-सा अच्छा कर्म कमाया है? कितनी आश्चर्यजनक बात है कि जिस हरि ने तेरी रचना की तथा तेरे शरीर को बनाया, तूने उसे ही मन से बिसार दिया है! जब सतगुरु की कृपा द्वारा हरि मन में बस गया, तो धुर के लेख के अनुसार हरि की प्राप्ति हो गयी। गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

जिस जीव ने सतगुरु के साथ मन लगा लिया, उसका संसार में आना सफल हो गया।

❖ ***ए सरीरा मेरिआ इस जग मह आए कै किआ तुध करम कमाइआ॥***
कि करम कमाइआ तुध सरीरा जा तू जग मह आइआ॥

गुरु साहिब जीव की तरफ़ से प्रश्न करते हैं: हे मेरे प्यारे! मनुष्य दावा करता है कि मैंने संसार में अनेक बड़े-बड़े कार्य किये हैं, फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि मेरे किसी भी कार्य का कोई मूल्य नहीं है। गुरु साहिब सावधान करते हुए कहते हैं: ***जिन हर तेरा रचन रचिआ सो हर मन न वसाइआ॥***– तेरे कर्ता ने तुझे अपनी लिव प्रभु के साथ जोड़ने के लिये भेजा था। क्या यह उद्देश्य तुमने ध्यान में रखा? अफ़सोस है कि तूने उस प्रभु को अपने मन में नहीं बसाया यानी तूने मनमर्ज़ी के अनेक कर्म तो किये, लेकिन मनुष्य जन्म के अवसर का उचित लाभ नहीं उठाया।

कबीर साहिब की वाणी है:

कवन काज सिरजे जग भीतर जनम कवन फल पाइआ॥
भव निध तरन तारन चिंतामन इक निमख न इह मन लाइआ॥
गोबिंद हम ऐसे अपराधी॥
जिन प्रभ जीउ पिंड था दीआ तिस की भाउ भगति नही साधी॥[171]

कबीर साहिब प्रश्न करते हैं: मेरे प्यारे! तू सोच कि तेरे सृजनहार ने तुझे किस कार्य के लिये सृजित करके इस संसार में भेजा था और तूने मनुष्य जन्म से क्या फल प्राप्त किया है? आप कहते हैं: हम बहुत बड़े अपराधी हैं। जिस प्रभु ने शरीर का सृजन किया और उसमें आत्मा की ज्योति रखी, हमने उसकी प्रेमा भक्ति की तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं दिया। बाबा फ़रीद का कलाम है:

फरीदा चार गवाइआ हंढ कै चार गवाइआ संम॥
लेखा रब मंगेसीआ तू आंहो केरेह कंम॥[172]

आप एक अन्य प्रसंग में सावधान करते हैं:

फरीदा जिन्ही कंमी नाहि गुण ते कंमड़े विसार॥
मत सरमिंदा थीवही सांई दै दरबार॥[173]

आप इन दोनों श्लोकों द्वारा यह प्रेरणा दे रहे हैं कि मनुष्य जन्म से लाभ उठाकर मालिक के साथ मिलाप कर लेना चाहिये, ताकि अंत समय मालिक के दरबार में शर्मसार न होना पड़े।

गुर परसादी हर मंन वसिआ पूरब लिखिआ पाइआ॥– गुरु साहिब विचार का दूसरा पहलू प्रस्तुत करते हुए कहते हैं: प्रभु द्वारा लिखे धुर के लेख और सतगुरु की दया द्वारा जिन भाग्यशाली जीवों के हृदय में प्रभु का प्रेम बस जाता है, उनका जन्म सफल हो जाता है। ***कहै नानक एह सरीर परवाण होआ जिन सतिगुर सिउ चित लाइआ॥***– आप कहते हैं कि जिनके हृदय में सतगुरु का प्रेम पैदा हो जाता है, वे लोग सतगुरु के उपदेशानुसार प्रभु के नाम के साथ जुड़कर प्रभु में समा जाते हैं, उनका मुनष्य जन्म का उद्देश्य पूरा हो जाता है। वे प्रभु के घर में स्वीकार हो जाते हैं।

ए नेत्रहो मेरिहो हर तुम मह जोत धरी हर बिन अवर न देखहो कोई॥
हर बिन अवर न देखहो कोई नदरी हर निहालिआ॥
एह विस संसार तुम देखदे एह हर का रूप है हर रूप नदरी आइआ॥
गुर परसादी बुझिआ जा वेखा हर इक है हर बिन अवर न कोई॥
कहै नानक एह नेत्र अंध से सतिगुर मिलिऐ दिब द्रिसट होई॥ ३६॥

सरलार्थ: हे मेरे नेत्रो! उस हरि ने तुम में अपनी ज्योति रखी है, इसलिये तुम हरि के बिना किसी दूसरे को न देखो। तुम हरि के बिना किसी दूसरे को बिलकुल न देखो और यह समझो कि जो कुछ दिखायी दे रहा है, उस हरि का रूप है। तुम यह जो विष से भरा संसार देख रहे हो, यह हरि का ही रूप है। तुम्हें संसार हरि के रूप में ही दिखायी देना चाहिये। जब गुरु की कृपा से सत्य की सूझ हो जाती है तो हर ओर

केवल एक हरि ही नज़र आता है और यह पक्का विश्वास हो जाता है कि हरि के बिना और कुछ नहीं है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं: पहले ये नेत्र अज्ञानता के कारण अंधे थे, परंतु जब सतगुरु मिला तो इन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी।

❖ ***ए नेत्रहो मेरिहो हर तुम मह जोत धरी हर बिन अवर न देखहो कोई॥***– गुरु साहिब ने तैंतीसवीं पउड़ी में 'ए सरीरा मेरिआ हर तुम मह जोत रखी ता तू जग मह आइआ॥' द्वारा आत्मा को शरीर से भिन्न बताते हुए, उसे प्रभु की ज्योति का दर्जा दिया था। अब 'ए नेत्रहो मेरिहो हर तुम मह जोत धरी' का संदेश दे रहे हैं। आप जड़ नेत्रों को प्रभु की ज्योति से अलग बता रहे हैं।

हर बिन अवर न देखहो कोई नदरी हर निहालिआ॥– आप कहते हैं: मेरे नेत्रो! तुम्हें यही शोभा देता है कि तुम संसार में हरि को व्याप्त देखो। तुम इस तरह तभी कर पाओगे यदि तुम पर हरि की दया भरी दृष्टि होगी।

एह विस संसार तुम देखदे एह हर का रूप है हर रूप नदरी आइआ॥– गुरु साहिब कहते हैं: तुम्हें संसार विष या दु:ख-रूप प्रतीत हो रहा है, परंतु जब हरि की कृपा हो जायेगी तो तुम्हें पता लगेगा कि यह हरि का ही रूप है।

गुर परसादी बुझिआ जा वेखा हर इक है हर बिन अवर न कोई॥– गुरु साहिब ने पहले हरि की कृपा की आवश्यकता को दर्शाया था। अब कह रहे हैं कि रचना और रचयिता का द्वैत कोरा भ्रम है और इस आत्मिक अनुभव की प्राप्ति सतगुरु की कृपा द्वारा होगी। फिर तुमको अनुभव होगा कि रचना केवल हरि ही है, हरि के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। फिर तुम्हें प्रत्यक्ष ज्ञान हो जायेगा कि जो कुछ है, हरि से है, जो कुछ है, उस हरि में समाया हुआ है, जो कुछ है हरि के सहारे क़ायम है और जो कुछ है हरि का रूप है।

कहै नानक एह नेत्र अंध से सतिगुर मिलिऐ दिब द्रिसट होई–'एह नेत्र अंध से' अभिप्राय है कि ये आँखें अंधी थीं। सतगुरु की दया से न केवल अंधे, आँखोंवाले हो गये बल्कि उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी। प्रभु सर्वव्यापक है, पर वह कहीं दिखायी नहीं देता। जब हरि और गुरु की कृपा हुई, तो रचना के कण-कण में हरि का प्रकाश दिखायी देने लगा। गुरु अंगद देव जी का कथन है:

अंधे एह न आखीअन जिन मुख लोइण नाहि॥
अंधे सेई नानका खसमहो घुथे जाहि॥[174]

अंधे वे नहीं हैं जिन्हें प्रभु ने आँखें नहीं बख़्शी, बल्कि वास्तव में अंधे वे हैं जो आँखें होने के बावजूद प्रभु को भूले बैठे हैं। गुरु अमरदास जी का कथन है: 'सबद न जाणह से अंने बोले से कित आए संसारा॥'[175] प्रभु के शब्द की ज्योति अंदर निरंतर जल रही है और उसमें से मीठी-प्यारी ध्वनि निरंतर निकल रही है। जो लोग न वह प्रकाश देखते हैं, न वह ध्वनि सुनते हैं, वे आँखें होने के बावजूद अंधे हैं और कान होने के बावजूद बहरे हैं। आप दूसरे प्रसंग में कहते हैं:

नानक बिन सतिगुर भेटे जग अंध है अंधे करम कमाए॥
सबदै सिउ चित न लावई जित सुख वसै मन आए॥[176]

गुरु रामदास जी का कथन है:

अंधे चानण ता थीऐ जा सतिगुर मिलै रजाए॥
बंधन तोड़ै सच वसै अगिआन अधेरा जाए॥[177]

जब तक प्रभु की दया द्वारा सतगुरु से मिलाप नहीं होता, न अज्ञानता का अंधापन दूर होता है, न ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है तथा न ही प्रभुरूपी सत्य के दर्शन होते हैं।

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

दिब द्रिसट जागै भरम चुकाए॥ गुर परसाद परम पद पाए॥
सो जोगी इह जुगत पछाणै गुर कै सबद बीचारी जीउ॥[178]

दिव्य दृष्टि सदा अंदर मौजूद है, परंतु यह सोयी हुई है। जब गुरु की कृपा से तुम शब्द के साथ लिव जोड़ोगे, तो दिव्य दृष्टि जाग जायेगी और तुम्हें परम पद की प्राप्ति हो जायेगी।

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

गिआन अंजन जा की नेत्री पड़िआ ता कउ सरब प्रगासा॥
अगिआन अंधेरै सूझस नाही बहुड़ बहुड़ भरमाता॥[179]

जब तक जीवात्मा अज्ञानता के अंधेरे में भटक रही है, इसे कहीं भी प्रभु का प्रकाश दिखाई नहीं देता। जब यह सतगुरु की दया से ज्ञान का अंजन आँखों में डाल लेती है, तो इसे हर जगह प्रभु का प्रकाश दिखायी देता है।

ए स्रवणहो मेरिहो साचै सुनणै नो पठाए॥
साचै सुनणै नो पठाए सरीर लाए सुणहो सत बाणी॥
जित सुणी मन तन हरिआ होआ रसना रस समाणी॥
सच अलख विडाणी ता की गत कही न जाए॥
कहै नानक अंम्रित नाम सुणहो पवित्र होवहो साचै सुनणै नो पठाए॥ ३७॥

स्रवणहो=कान; **साचै**=भाव सच्चे नाम को; **पठाए**=भेजे; **हरिआ**=खिलना, प्रसन्न होना; **विडाणी**=आश्चर्यजनक।

सरलार्थ: हे मेरे कान! उस प्रभु ने तुम्हें उसका नाम सुनने के लिये भेजा है तथा शरीर के साथ लगाया है। तुम सदा वह सच्ची वाणी सुनो, जिसको सुनने से तन भी खिल जाता है, मन भी खिल जाता है और जिह्वा रस से भर जाती है। उस आश्चर्यजनक अलख प्रभु की गति कहने-सुनने से बाहर है। गुरु साहिब उपदेश देते हैं: हे मेरे कान! प्रभु के अमृतमय नाम को सुनो और पवित्र हो जाओ। प्रभु ने तुम्हें सच्चे नाम को सुनने के लिये भेजा है।

❖ ***ए स्रवणहो मेरिहो साचै सुनणै नो पठाए॥***– इस पंक्ति को पउड़ी की अंतिम पंक्ति के साथ मिलाकर पढ़ना चाहिये जिसमें गुरु साहिब कहते हैं: ***कहै नानक अंम्रित नाम सुणहो पवित्र होवहो साचै सुनणै नो पठाए॥*** गुरबानी व्याकरण के अनुसार 'साचै' के यह अर्थ बनते हैं: 'सच्चे प्रभु ने या सच्चे नाम को।' गुरु साहिब उपदेश देते हैं: मेरे कान! तुम्हें सच्चे प्रभु ने सच्चा नाम सुनने के लिये शरीर के साथ लगाया है। इसलिये तुम सदा सच्चे नाम को सुनते रहो। गुरु साहिब इसी उपदेश को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं:

साचै सुनणै नो पठाए सरीर लाए सुणहो सत बाणी॥
जित सुणी मन तन हरिआ होआ रसना रस समाणी॥

हे कान! तुम्हें सच्चे प्रभु ने शब्द यानी नामरूपी सच्ची वाणी सुनने के लिये शरीर के साथ लगाया है। तुम सदा शब्द (नामरूपी सच्ची वाणी) के साथ लिव जोड़कर रखो। उस वाणी को सुनने से तन-मन खिल जाता है और मन नाम के रस में मग्न हो जाता है।

सच अलख विडाणी ता की गत कही न जाए॥– वह सच्चा प्रभु मन और इंद्रियों की पहुँच से बाहर है और उसकी महिमा बयान कर पाना असंभव है।

कहै नानक अंम्रित नाम सुणहो पवित्र होवहो साचै सुनणै नो पठाए॥– नाम अमृत का रूप है। नामरूपी अमृत को पीकर आत्मा पर लगी जन्मों-जन्मों की इच्छाओं, तृष्णाओं, विषय-विकारों, कर्मों और संस्कारों आदि की सब मैल दूर हो जायेगी और आत्मा पूरी तरह से निर्मल हो जायेगी। इसलिये तुम सदा प्रभु की सच्ची वाणी यानी अमृत भरे नाम के साथ जुड़े रहो।

हर जीउ गुफा अंदर रख कै वाजा पवण वजाइआ॥
वजाइआ वाजा पउण नउ दुआरे परगट कीए दसवा गुपत रखाइआ॥
गुरदुआरै लाए भावनी इकना दसवा दुआर दिखाइआ॥
तह अनेक रूप नाउ नव निध तिस दा अंत न जाई पाइआ॥
कहै नानक हर पिआरै जीउ गुफा अंदर रख कै
वाजा पवण वजाइआ॥ ३८॥

पउण=श्वास; **भावनी**=प्रेम।

सरलार्थ: उस हरि ने जीव (आत्मा) को शरीररूपी गुफा में रखकर श्वासों का बाजा बजा दिया। उसने शरीर के नौ द्वार (दो कान, दो आँखें, दो नासिकायें, मुँह और मल-मूत्र के दो स्थान) सांसारिक कार्य-व्यवहार के लिये प्रकट कर दिये, परंतु वह दसवाँ द्वार जहाँ

उस हरि का दर्शन होता है, गुप्त रूप में अंदर (आँखों से ऊपर) रख दिया। जिन भाग्यशाली जीवों को हरि ने सतगुरु के दर पर पहुँचाकर उनके अंदर सतगुरु का प्रेम और विश्वास पैदा कर दिया – अर्थात् जिन भाग्यशाली जीवों ने सतगुरु पर विश्वास रखकर प्रेमपूर्वक नाम का अभ्यास करना शुरू कर दिया – प्रभु ने उन्हें दसवाँ द्वार भी दिखा दिया। वहाँ दसवें द्वार में आश्चर्यजनक नौ निधियों से भरपूर, अनंत-अथाह नाम व्याप्त है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं: प्यारे! हरि ने जीव (आत्मा) को शरीररूपी गुफा में रखकर प्राणों का बाजा बजाया हुआ है।

❖ अन्य गुरु साहिबान की वाणी की तरह 'अनंद साहिब' में भी आध्यात्मिक सिद्धांत और उसको व्यावहारिक रूप देनेवाली साधना का रंग नज़र आता है। कहीं सिद्धांत का रंग गहरा नज़र आता है, कहीं साधना का। 'अनंद साहिब' की अंतिम कुछ पउड़ियों में साधना का रंग प्रधान है। गुरु साहिब ने छत्तीसवीं पउड़ी में 'सतिगुर मिलिऐ दिब द्रिसट होई' और सैंतीसवीं पउड़ी में 'कहै नानक अंम्रित नाम सुणहो पवित्र होवहो' का उपदेश दिया था। अड़तीसवीं पउड़ी में भी साधनामय रंग प्रधान है। गुरु साहिब कहते हैं:

हर जीउ गुफा अंदर रख कै वाजा पवण वजाइआ॥
वजाइआ वाजा पउण नउ दुआरे परगट कीए दसवा गुपत रखाइआ॥

गुरु साहिब कहते हैं कि हरि ने जीव को शरीररूपी गुफा के अंदर रखकर इसमें प्राणों यानी साँसों का बाजा बजा दिया। प्रभु ने मनुष्य शरीर की आँखों से नीचे नौ द्वार तो प्रकट कर दिये, परंतु दसवें दरवाज़े को गुप्त रखा। आपका भाव है कि शारीरिक और सांसारिक कार्य व्यवहार के लिये बनाये स्थूल नौ द्वार प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं पर आँखों से ऊपर रखा गया सूक्ष्म दसवाँ द्वार गुप्त है। उस गुप्त द्वार तक किस प्रकार पहुँचा जा सकता है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं: ***इकना दसवा दुआर दिखाइआ*** – वह दरवाज़ा विरले भाग्यशाली जीवों को दिखाया जाता है। ***गुरदुआरै लाए भावनी*** – जो प्रेमपूर्वक गुरु के उपदेश पर चलते हैं, उनके अंदर वह गुप्त द्वार प्रकट हो जाता है। ***तह अनेक रूप नाउ नव निध तिस दा अंत न जाई पाइआ॥*** – वहाँ पहुँचकर जीवात्मा का मिलाप नौ निधियों से

भरपूर सुंदर, मनोहर, प्यारे नाम से होता है, जिसका कोई आदि-अंत नहीं है। आपकी वाणी है:

इसु गुफा मह अखुट भंडारा॥ तिस विच वसै हर अलख अपारा॥
आपे गुपत परगट है आपे गुर सबदी आप वंञावणिआ॥
हउ वारी जीउ वारी अंम्रित नाम मंन वसावणिआ॥
अंम्रित नाम महा रस मीठा गुरमती अंम्रित पीआवणिआ॥[180]

आप कहते हैं कि शरीररूपी गुफा के अंदर अनगिनत भंडार भरे हुए हैं। वह अलख, अगम प्रभु भी इसके अंदर है। जब सतगुरु की कृपा से नाम के साथ लिव जुड़ जाती है तो वह गुप्त प्रभु प्रकट हो जाता है। यह कार्य किस तरह से होता है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं:

नउ दर ठाके धावत रहाए॥ दसवै निज घर वासा पाए॥
ओथै अनहद सबद वजह दिन राती गुरमती सबद सुणावणिआ॥[181]

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

नउ निध अंम्रित प्रभ का नाम॥ देही मह इस का बिस्राम॥
सुंन समाध अनहत तह नाद॥ कहन न जाई अचरज बिसमाद॥
तिन देखिआ जिस आप दिखाए॥ नानक तिस जन सोझी पाए॥[182]

नौ निधियों से भरपूर प्रभु का नाम शरीर के अंदर है। वह गुप्त नाम शरीर में किस तरह से प्रकट होता है? वह सुन्न समाधि की अवस्था में प्रकट होता है। सुन्न समाधि की अवस्था से क्या आशय है? जब शरीर का आँखों से नीचे का भाग पूरी तरह से सुन्न हो जाता है, तो समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है। उस अवस्था की क्या निशानी है? उस अवस्था में अंदर आश्चर्यजनक आनंद रूप अनहद शब्द (नाम) सुनायी देने लगता है। दसवें द्वार को कौन देखता है? वहाँ पहुँचकर शब्द के नाद को कौन सुनता है? उसके प्रकाश को कौन देखता है? जिसे वह प्रभु वहाँ पहुँचाता है, केवल वही उस द्वार तथा उसके अंदर समाये शब्द के प्रकाश को देख सकता है और वही उस शब्द के आनंद भरे नाद को सुन सकता है।

आप कहते हैं कि सतगुरु के उपदेशानुसार नौ द्वारों के ज़रिये सारे संसार में भटक रहे ध्यान को आँखों से ऊपर एकाग्र करके, जीवात्मा दसवें द्वार भाव निज घर में पहुँच गयी। वहाँ पहुँचकर इसे दिन-रात निरंतर हो रहा अनहद शब्द सुनायी देने लगा। गुरु अमरदास जी कहते हैं:

नउ दरवाज नवे दर फीके रस अंम्रित दसवे चुईजै॥
क्रिपा क्रिपा किरपा कर पिआरे गुर सबदी हर रस पीजै॥[183]

आप कहते हैं कि शरीर के नौ द्वारों में इंद्रियों के फीके और नश्वर भोगों के स्वाद हैं। प्रभु के नाम का आनंद से भरपूर अमृत दसवें द्वार में बरस रहा है। आप प्रार्थना करते हैं: हे प्रभु! कृपा कर ताकि हम सतगुरु की दया से उस अमृत को पी सकें।

एह साचा सोहिला साचै घर गावहो॥
गावहो त सोहिला घर साचै जिथै सदा सच धिआवहे॥
सचो धिआवह जा तुध भावह गुरमुख जिना बुझावहे॥
इह सच सभना का खसम है जिस बखसे सो जन पावहे॥
कहै नानक सच सोहिला सचै घर गावहे॥ ३९॥

सरलार्थ: मेरे प्रियजनो! प्रभु की स्तुति का नामरूपी सच्चा सोहिला दसवें द्वाररूपी सच्चे घर में गाओ। उस सच्चे प्रभु का ध्यान उसी सच्चे घर में किया जा सकता है। उस प्रभु का ध्यान इस विधि से तभी किया जा सकता है, जब प्रभु को स्वीकार हो। उसका ध्यान वे जीव कर सकते हैं जिन्हें गुरुमुखों द्वारा उस सच्चे घर की सूझ बख़्शी जाती है। सच्चा प्रभु सबका स्वामी है। जिस पर प्रभु की बख़्शिश होती है उसी को प्रभु मिलता है। केवल वही उस सच्चे घर में सच्चा सोहिला गाते हैं जिन्हें कुल मालिक स्वयं चाहता है।

❖ ***एह साचा सोहिला साचै घर गावहो॥***
गावहो त सोहिला घर साचै जिथै सदा सच धिआवहे॥

गुरु साहिब पिछली पउड़ी में प्रकट भाव का विस्तार करते हुए कहते हैं: मेरे प्रियजनो! यह नामरूपी सच्चा सोहिला (मंगल गीत) दसवें द्वाररूपी सच्चे घर में गाओ। तुम उस सच्चे घर में ही यह आनंद भरा गीत गाओ, क्योंकि उस घर में पहुँचकर ही पल-पल उस सच्चे प्रभु का ध्यान किया जा सकता है, उस सच्चे का भजन किया जा सकता है। गुरु साहिब ने 16वीं पउड़ी में 'एह सोहिला सबद सुहावा' द्वारा भी यही भाव प्रकट किया है।

सचो धिआवह जा तुध भावह गुरमुख जिना बुझावहे॥– गुरु साहिब कहते हैं: यह ठीक है कि दसवें द्वार में पहुँचकर पल-पल, साँस-साँस उस सच्चे का ध्यान करना चाहिये। परंतु उस सच्चे का ध्यान तभी हो सकता है जब सच्चे को यह स्वीकार हो और गुरुमुखों द्वारा उस सच्चे का ध्यान करने की सूझ अथवा युक्ति (विधि) प्राप्त हो जाये।

इह सच सभना का खसम है जिस बखसे सो जन पावहे॥– आप उसी भाव पर ज़ोर देते हुए कहते हैं कि प्रभु (नामरूपी सत्य) सबका मालिक है तथा उस सत्य की सूझ केवल उसे ही होती है, जिसे वह स्वयं बख़्शता है। कोई प्राणी कभी किसी भी अवस्था में अपनी बल-बुद्धि द्वारा उस सच्चे की पहचान नहीं कर सकता। उस सर्वसमर्थ स्वामी की पहचान पूरी तरह से उसकी दया-मेहर और बख़्शिश पर निर्भर है।

कहै नानक सच सोहिला सचै घर गावहे॥– गुरु साहिब कहते हैं: मेरे प्रियजनो! प्रभु की दया और सतगुरु की समझायी युक्ति के अनुसार नामरूपी सच्चा सोहिला दसवें द्वाररूपी सच्चे घर में सदा गाते रहना चाहिये। गुरु साहिब वाणी के दूसरे प्रसंग में कहते हैं:

सबद सचै सच सोहिला जिथै सच का होए वीचारो राम॥
हउमै सभ किलविख काटे साच रखिआ उर धारे राम॥[184]

आप कहते हैं कि सच्चा शब्द ही वह सच्चा सोहिला है, जिसके द्वारा उस कर्ता की भक्ति की जा सकती है। इस सच्चे सोहिले द्वारा ही अहंकार और पापों का नाश होता है तथा प्रभु को अंदर धारण किया जा सकता है। गुरु साहिब का कथन है:

गुर सबदे राता सहजे माता नाम मन वसाए॥
नानक तिन घर सद ही सोहिला जि सतिगुर सेव समाए॥[185]

जो सतगुरु के शब्द (नाम) के रंग में रँग जाता है, उसे सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है। जो मन को सतगुरु की सेवा में लगा देता है अर्थात् जो तन-मन से शब्द (नाम) का अभ्यास करता है, उसे अपने अंदर सदा ही शब्द यानी नाम का आनंद से भरा सोहिला सुनायी देता रहता है। आप कहते हैं:

गुर का सबद वसिआ घट अंतर से जन सबद सुहाए॥
नानक तिन घर सद ही सोहिला हर कर किरपा घर आए॥[186]

जिस हृदय में शब्द प्रकट हो जाता है, वह हृदय सुंदर, सुहावना और निर्मल हो जाता है। उस हृदय में सदा ही परमेश्वर के नाम का आनंद से भरा सोहिला गूँजता रहता है तथा वह दयालु परमेश्वर दया करके उस हृदय में प्रकट हो जाता है। गुरु साहिब इसी भाव को इस तरह से भी प्रकट करते हैं:

हम घरे साचा सोहिला साचै सबद सुहाइआ राम॥
धन पिर मेल भइआ प्रभ आप मिलाइआ राम॥[187]

स्पष्ट है कि गुरु साहिब ने सच्चे नाम, सच्चे शब्द या सच्ची वाणी को ही सच्चा सोहिला कहकर सराहा है।

अनद सुणहो वडभागीहो सगल मनोरथ पूरे॥
पारब्रहम प्रभ पाइआ उतरे सगल विसूरे॥
दूख रोग संताप उतरे सुणी सची बाणी॥
संत साजन भए सरसे पूरे गुर ते जाणी॥
सुणते पुनीत कहते पवित सतिगुर रहिआ भरपूरे॥
बिनवंत नानक गुर चरण लागे वाजे अनहद तूरे॥४०॥

विसूरे=दु:ख; **सरसे**=आनंद मग्न।

सरलार्थ: मेरे प्रेमीजनो! तुम आनंददायक अनहद शब्द को सुनोगे तो भाग्यशाली बन जाओगे। तुम्हारे सारे उद्देश्य पूरे हो जायेंगे। अनहद शब्द से लिव जोड़ने से प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है और उस सच्ची

वाणी को सुनकर सब दु:ख, रोग, संताप दूर हो जाते हैं। पूरे गुरु से ज्ञान प्राप्त करके, संतजन सदा उस आनंद में मग्न रहते हैं। इस सच्ची वाणी को सुननेवाले भी पवित्र हो जाते हैं तथा इसका उपदेश देनेवाले भी पवित्र हैं। उन्हें हर स्थान पर शब्दरूपी सतगुरु व्याप्त दिखायी देता है। गुरु साहिब कहते हैं कि जो लोग गुरु के आंतरिक चरणों से जुड़ गये हैं, उनके अंदर अनहद शब्द के साज़ बजने शुरू हो जाते हैं।

❖ ***अनद सुणहो वडभागीहो सगल मनोरथ पूरे॥***– गुरु साहिब कहते हैं: मेरे प्रियजनो! तुम अनहद शब्द सुनो। इससे तुम्हारे सब कार्य पूर्ण हो जायेंगे। और क्या लाभ होगा? ***पारब्रहम प्रभ पाइआ उतरे सगल विसूरे॥*** तुम्हारा उस पारब्रह्म परमेश्वर के साथ मिलाप हो जायेगा और सारे दु:ख दूर हो जायेंगे। ***दूख रोग संताप उतरे सुणी सची बाणी॥*** आपने पहली पंक्ति में 'अनद सुणहो' का उपदेश दिया था। अब कह रहे हैं कि तुम उस सच्ची वाणी को सुनो। उस वाणी को सुनने से तुम्हारे सब दु:ख, रोग और संताप दूर हो जायेंगे।

संत साजन भए सरसे पूरे गुर ते जाणी॥– जब तुम उस सच्ची वाणी को सुनोगे तो उसके आनंद में सदा मग्न रहोगे। मन में प्रश्न उत्पन्न होता है कि वह सच्ची वाणी कैसे सुनें? गुरु साहिब उत्तर देते हैं: *पूरे गुर ते जाणी*– उस सच्ची वाणी के साथ लिव जोड़ने की युक्ति पूरे गुरु से प्राप्त होगी। उस सच्ची वाणी के बारे में आप तेईसवीं और चौबीसवीं पउड़ी में पहले ही समझा आये हैं।

सुणते पुनीत कहते पवित सतिगुर रहिआ भरपूरे॥– आप कहते हैं कि जो उस सच्ची वाणी को अंतर में सुनते हैं, वे भी निर्मल हैं और जो उस सच्ची वाणी के साथ जुड़ने का साधन बताते हैं, वे भी निर्मल हैं। नामरूपी सच्ची वाणी ही सच्चा गुरु है, जो सर्वव्यापक है।

गुरु रामदास जी की वाणी है:

सतिगुर मेरा सदा सदा ना आवै ना जाए॥
ओह अबिनासी पुरख है सभ मह रहिआ समाए॥[188]

आप कहते हैं कि मेरा सतगुरु अकालपुरुष प्रभु का रूप है। वह अविनाशी पुरुष जन्म-मरण से ऊपर है। वह प्रभु की तरह सर्वव्यापक है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

ब्रहम मह जन जन मह पारब्रहम॥ एकह आप नही कछु भरम॥[189]

बिनवंत नानक गुर चरण लागे वाजे अनहद तूरे॥ – गुरु साहिब नम्रतापूर्वक कहते हैं: मेरे प्रियजनो! जो लोग सतगुरु के आंतरिक चरणों से जुड़ जाते हैं, उनके अंदर अनहद शब्द के साज़ बजने शुरू हो जाते हैं। गुरु साहिब ने पहली पंक्ति में 'अनद सुणहो', तीसरी पंक्ति में 'सुणी सची बाणी', चौथी पंक्ति में 'पूरे गुर ते जाणी', पाँचवीं पंक्ति में 'सुणते पुनीत कहते पवित' का संकेत किया है। आप 'वाजे अनहद तूरे' द्वारा अपने विचार को पूर्णता प्रदान करते हुए कहते हैं कि जब अंदर उस सच्ची वाणी (अनहद शब्द) को सुनोगे तो तुम्हें परम आनंद की प्राप्ति होगी। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

गुरमत राम जपै जन पूरा॥ तित घट अनहत बाजे तूरा॥[190]

जो सच्चा भक्त सतगुरु के उपदेशानुसार नाम का अभ्यास करता है, उसको अपने अंतर में अनहद शब्द के आनंद भरे बाजे बजते सुनायी देने लगते हैं। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है: '*काज हमारे पूरे सतगुर॥ बाजे अनहद तूरे सतगुर॥*'[191] आप एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

गुर पूरा आराधे॥ कारज सगले साधे॥
सगल मनोरथ पूरे॥ बाजे अनहद तूरे॥[192]

पूरे सतगुरु की दया से सभी कार्य संपूर्ण हो गये, सभी मनोरथों की सिद्धि हो गयी और अंतर में बजते हुए अनहद शब्द के आनंद भरे बाजे सुनायी देने लगे।

'अनंद' और आनंद

अन्य गुरु साहिबान की वाणी की तरह गुरु अमरदास जी की सर्वश्रेष्ठ रचना 'अनंद' का मूल विषय भी सच्चे और पूर्ण आनंद के स्वरूप पर प्रकाश डालना तथा इसकी प्राप्ति के साधन का उल्लेख करना है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं: '*आनंद आनंद सभ को कहै आनंद गुरू ते जाणिआ॥*' (पउड़ी 7) आप सचेत करते हैं कि अपनी ओर से तो संसार के सभी लोग आनंद के बारे में अनेक प्रकार के विचार प्रकट करते हैं तथा अपनी सूझ-बूझ के अनुसार अनेक विधियों से आनंद की प्राप्ति के लिये कई प्रकार के प्रयत्न भी करते हैं, परंतु सच्चे आनंद तथा उसकी प्राप्ति के सच्चे साधन का ज्ञान केवल प्रभु से मिलकर पूर्ण आनंद प्राप्त कर चुके संत-सतगुरु से ही मिल सकता है। गुरु साहिब का संकेत शारीरिक, ऐंद्रिक या मानसिक आनंद की ओर नहीं है। आपका इशारा आत्मा को परमात्मा के मिलाप से प्राप्त होनेवाले आनंद की ओर है। गुरु साहिब हर मायामय सुख को अधूरा तथा नाशवान् मानते हैं। आप केवल पूर्ण तथा अविनाशी परमात्मा को ही पूर्ण और अविनाशी आनंद का सच्चा तथा स्थायी स्रोत स्वीकार करते हैं।

गुरु साहिब सावधान करते हैं कि मनुष्य के अस्तित्व का आधार, शरीर, इंद्रियाँ तथा मन नहीं हैं। ये आत्मा के कार्यशील होने के यंत्र मात्र हैं। ये सब नश्वर हैं। रंग-तमाशे, कलाएँ आदि मन का विलास हैं। ये आत्मा का आधार नहीं हैं। आत्मा का आधार प्रभु का प्रेम, उसका नाम है।

आत्मा परमात्मा का अंश है। इसमें परमात्मा के सब गुण विद्यमान हैं, परंतु प्रकट रूप में नहीं हैं। आत्मा अपने मूल स्वभाव में परमात्मा के समान ही, अविनाशी, ज्ञान रूप तथा आनंद रूप है। अपने मूल स्वरूप का ज्ञान न होने तथा अपने स्रोत से बिछुड़े होने के कारण यह अनंत काल से दु:खों की चक्की में पिस रही है। गुरु साहिब जीवात्मा को अपने स्रोत की पहचान करने

का उपदेश देते हैं: 'ए सरीरा मेरिआ हर तुम मह जोत रखी ता तू जग मह आइआ॥' (पउड़ी 33) जीवात्मा के अंदर परमात्मा का प्रकाश समाया हुआ है। 'जिन हर तेरा रचन रचिआ सो हर मन न वसाइआ॥' (पउड़ी 35) आप जीवात्मा को समझाते हैं कि तेरे सब दु:खों का कारण अपने सृजनहार की ओर से अचेत होना है। तेरे जीवन का मूल उद्देश्य अपन-आपको अपने स्रोत से जोड़ना है। 'जिस दा जीउ तिस मिल रहै हर वसै मन आए॥' (पउड़ी 30) आत्मा, परमात्मारूपी अंशी का अंश है। अंश का वास्तविक धर्म अपने-आपको अंशी में लीन कर देना है। इसी में अंश की पूर्णता है और यही सच्चे तथा पूर्ण आनंद की प्राप्ति का वास्तविक साधन है।

गुरु साहिब जीव को प्रेरणा देते हैं कि जब तेरा अपने अंशी भाव परमात्मा से मिलाप हो जायेगा, तो तेरे सब दु:खों का नाश हो जायेगा। तेरे सब कार्य पूर्ण हो जायेंगे और तुझे परम आनंद की प्राप्ति हो जायेगी। इसलिये तुझे कभी पल भर के लिए भी प्रभु को नहीं भुलाना चाहिये। (पउड़ी 2)

जीव की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह अपनी शक्ति तथा अपने ज्ञान द्वारा परमात्मा से मिलाप नहीं कर सकता। यही कारण है कि गुरु साहिबान की वाणी में '१ओ गुर प्रसाद' द्वारा प्रभु की प्राप्ति को सतगुरु की दया-मेहर पर आधारित किया गया है। गुरु अमर दास जी ने 'अनंद' में बार-बार यही भाव दृढ़ करवाने का यत्न किया है। आप कहते हैं:

> गुर परसादी बुझिआ जा वेखा हर इक है हर बिन अवर न कोई॥
> कहै नानक एह नेत्र अंध से सतिगुर मिलिऐ दिब द्रिसट होई॥
> (पउड़ी 36)

गुरु साहिब ने 'बुझिआ' शब्द का प्रयोग किया है। पहेली सुलझा ली जाये तो अज्ञानता से ज्ञान में पहुँच जाते हैं। प्रभु भी अंदर है, आत्मा भी अंदर है। प्रभु के साथ मिलाप का साधन भी अंदर है। वर्तमान अवस्था में यह सब एक उलझन भरी पहेली है, परंतु जब सतगुरु की कृपा से यह पहेली सुलझा ली जाती है तो फिर हरि का अस्तित्व भी सत्य प्रतीत होने लगता है। पूर्ण अद्वैत का ज्ञान भी हो जाता है तथा प्रभु के सर्वव्यापक होने का विश्वास भी पक्का हो जाता है।

'बाहरहो त निरमल जीअहो निरमल सतिगुर ते करणी कमाणी॥' (पउड़ी 20) वर्तमान अवस्था में हम बाहरी स्वच्छता की ओर अधिक ध्यान देते हैं, परंतु मन विषय-विकारों, इंद्रियों के भोगों, इच्छाओं और तृष्णाओं की गंदगी से भरा हुआ है। इस तरह जन्म व्यर्थ व्यतीत हो जाता है। जब जीव अपना जीवन सतगुरु के उपदेशानुसार ढालता है तो वह अंदर-बाहर से पूर्ण रूप से निर्मल हो जाता है। माया की मैल उसके पास नहीं फटकती। वह जगत् की इच्छा से मुक्त होकर जगदीश के प्रेम में परिपक्व हो जाता है, उस अवस्था में जीव को प्रभु सदा अंग-संग दिखायी देता है। ऐसे जीव का संसार में आना और मनुष्य जन्म धारण करना सफल हो जाता है।

अपनी शरण में आये हुए शिष्य के अंदर सतगुरु पूरी तरह परिवर्तन किस तरह से लाते हैं? गुरु साहिब 'अनंद' में बार-बार इस बात पर बल देते हैं कि सतगुरु शिष्य की लिव नाम के साथ जोड़कर उसका काया कल्प करते हैं। सतगुरु शिष्य को अनेक प्रकार की बहिर्मुखी भक्ति, तरह-तरह के कर्मकांडों, हठ कर्मों, ज्ञानमार्ग, त्याग आदि से छुड़ाकर नाम के अंतर्मुख अभ्यास में लगाते हैं। नाम के साथ लिव जोड़ने के लिये शरीर तथा संसार में फैले हुए ध्यान को अंतर्मुख करना आवश्यक है।

गुरु साहिब विस्तारपूर्वक समझाते हैं कि नाम या शब्द शरीररूपी गुफा के अंदर है। इस गुफा के नौ द्वार प्रत्यक्ष रूप से दिखायी देते हैं। वे द्वार बाहर की ओर खुलते हैं पर दसवाँ द्वार जो अंदर की ओर खुलता है, गुप्त है। 'गुर दुआरे लाए भावनी इकना दसवा दुआर दिखाइआ॥' वह दसवाँ द्वार विरले गुरु प्रेमियों को दिखायी देता है। 'तह अनेक रूप नाउ नव निध तिस दा अंत न जाई पाइआ॥' (पउड़ी 38) दसवें द्वार में ध्यान एकाग्र और स्थिर करने से मिलनेवाला नाम 'अनंत' है। नाम का आदि, मध्य और अंत नहीं है। वह अनुपम है। लोक-परलोक की ऐसी कोई संपदा नहीं जो उस नाम के दायरे से बाहर हो।

गुरु साहिब उपदेश करते हैं: 'सबदो त गावहो हरी केरा मन जिनी वसाइआ॥' (पउड़ी 1) मेरे प्रियजनो! केवल शब्द से लिव जोड़ने पर ही मन में प्रभु का निवास होगा। आप फरमाते हैं: 'सदा सिफत सलाह तेरी नाम मन

वसावए॥ नाम जिन कै मन वसिआ वाजे सबद घनेरे॥' (पउड़ी 3) नाम के साथ लिव जोड़ना ही परमात्मा का गुणगान करना है और नाम के साथ लिव जोड़ने पर ही अंतर में अनहद शब्द प्रकट होता है।

आप फ़रमाते हैं कि जब अंतर में पाँच शब्द बजते सुनायी देने लग जाते हैं, तो विषय-विकारों का नाश हो जाता है, जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा मिल जाता है तथा सच्चे सुख की प्राप्ति हो जाती है।

गुरु साहिब कहते हैं: *'साच नाम आधार मेरा जिन भुखा सभ गवाईआ॥'* (पउड़ी 4) नाम सब तृष्णाओं को शांत करता है, नाम ही मन में सच्चा संतोष पैदा करता है और यही मन की शांति का स्रोत सिद्ध होता है। *'फिर मुकत पाए लाग चरणी सतिगुरू सबद सुणाए॥'* (पउड़ी 22) सतगुरु अपनी शरण में आये जीव की लिव शब्द से जोड़ देता है और शब्द उसे परमात्मा में लीन कर देता है। इस तरह जीव आवागमन से मुक्त होकर प्रभु के धाम अर्थात् निजधाम पहुँच जाता है। *'तोड़े बंधन होवै मुकत सबद मंन वसाए॥'* (पउड़ी 26) जब शब्द मन में बस जाता है तो आवागमन के बंधन से मुक्ति मिल जाती है।

गुरु साहिब अपनी विचारधारा को पूर्णता प्रदान करते हुए कहते हैं: *'अनद सुणहो वडभागीहो सगल मनोरथ पूरे॥'* (पउड़ी 40) मेरे प्रियजनो! ध्यान को अपने अंदर स्थिर करके अनहद शब्द के साथ लिव जोड़ो, ताकि तुम्हारे सभी कार्य संपूर्ण हो जायें और पारब्रह्म परमेश्वर के साथ मिलाप हो जाये। *'बिनवंत नानक गुर चरण लागे वाजे अनहद तूरे॥'* सतगुरु की शरण प्राप्त होने का भाव सतगुरु के उपदेशानुसार नाम का अभ्यास करने से अंदर अनहद शब्द के आनंदपूर्ण साज़ बजते सुनायी देने लगेंगे। तब तुम हर तरह के दु:खों से सदा के लिये मुक्त होकर सच्चे और पूर्ण आनंद के अधिकारी बन जाओगे।

लावां

गुरु रामदास जी

गुरु रामदास जी, गुरु नानक साहिब द्वारा चलाई गयी गुरुमत धारा में चौथे पूर्ण संत (सतगुरु) हुए हैं। आपका जन्म 24 सितम्बर, 1534 ई. (कार्तिक सुदी 2, वि. संवत् 1591) को श्री हरिदास सोढी जी के घर, लाहौर शहर की चूना मंडी में हुआ। आपकी माता का नाम दया कौर जी था। आपका वास्तविक नाम 'रामदास' था, परंतु घर में ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण आपको 'जेठा' कहकर पुकारा जाता था।

जब आपकी आयु केवल सात वर्ष की थी तो पहले माता जी और फिर पिता जी परलोक सिधार गये। आपकी नानी आपको अपने गाँव बासरके, ज़िला अमृतसर ले आयीं। आप बारह वर्ष की आयु में गाँव की संगत के साथ गुरु अमरदास जी के दर्शन करने के लिये गोइंदवाल गये। आपके हृदय पर गुरु साहिब के व्यक्तित्व और उपदेश का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि आपने घर वापस जाने का विचार त्याग दिया और गोइंदवाल में गुरु और संगत की सेवा में मग्न हो गये। आप सुबह गुरु अमरदास जी की सेवा करते, फिर लंगर में सेवा के लिये चले जाते और ख़ाली समय में घुंगनियाँ* बेचने का काम करते थे।

जिन्हें बड़े होकर कुछ बनना होता है, उनके अंदर शुरू से ही विशेष गुण दिखाई देते हैं। रामदास जी भी शुरू से ही सेवा, प्रेम और नम्रता के गुणों से परिपूर्ण थे। गुरु अमरदास जी की दिव्य दृष्टि ने इस हीरे को पहचान लिया और आपने अपनी सपुत्री बीबी भानी का विवाह रामदास जी के साथ कर दिया।

रामदास जी रिश्ते में गुरु अमरदास जी के दामाद थे पर निजी व्यवहार में आपने स्वयं को सदा गुरु अमरदास जी का तुच्छ दास ही समझा। आप ने

* अनाज के उबले हुए दाने।

सतगुरु और संगत की सेवा ही नहीं की, अपितु गुरु की आज्ञा का पालन करना भी अपना धर्म समझा। आपके जीवन के साथ जुड़ी एक घटना से आपके सतगुरु के प्रति प्रेम और विश्वास का सुंदर प्रमाण मिलता है।

एक बार गुरु अमरदास जी ने अपने शिष्यों को एक जगह मिट्टी के चबूतरे बनाने के लिये कहा। जब चबूतरे बन गये तो गुरु साहिब ने कहा: ये ठीक नहीं हैं, इन्हें गिराकर फिर से बनाओ। गुरु साहिब बार-बार चबूतरे बनवाते और गिरवाते रहे। धीरे-धीरे चबूतरे बनाने और गिरानेवालों की संख्या कम होती गयी। अंत में केवल रामदास जी ही रह गये। कुछ लोगों ने उनसे कहा कि तुम गुरु साहिब के कहने पर बार-बार चबूतरे क्यों बनाते और गिराते जा रहे हो? रामदास जी ने उत्तर दिया: यदि गुरु अमरदास जी मुझे आजीवन चबूतरे बनाने और गिराने में ही लगाये रखेंगे, तो भी रामदास लगा रहेगा। यह है, गुरु पर विश्वास और गुरु के हुक्म का पालन!

कहा जाता है कि गुरु रामदास जी ने सत्तर बार चबूतरे बनाये और गिराये। इस पर गुरु अमरदास जी ने कहा: रामदास! तू भी अब चबूतरे बनाने छोड़ दे। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, क्योंकि एक तू ही है जिसने बिना कुछ कहे पूरे विश्वास के साथ मेरा हुक्म माना है। गुरु साहिब चबूतरे क्यों बनवाते और गिरवाते थे? केवल इसलिये कि जिस हृदय में नाम की दौलत रखनी है और जिससे असंख्य जीवों को लाभ प्राप्त करना है, वह हृदय भी इसके योग्य होना चाहिये। रामदास जी का अटूट प्रेम देखकर गुरु अमरदास जी ने उन्हें गले से लगा लिया और रूहानी दौलत से भरपूर कर दिया।

शिष्य के अंदर जो भी प्रेम और विश्वास होता है, उसमें सतगुरु की दया-मेहर के साथ शिष्य की साधना भी शामिल होती है। जब तक शिष्य नाम के अभ्यास द्वारा गुरु के दिव्य तेज को नहीं देख लेता, उसके अंदर सतगुरु का पूर्ण प्रेम और विश्वास पैदा नहीं हो सकता। इस घटना द्वारा गुरु साहिब ने संगत को भी दिखा दिया कि रामदास जी पूर्ण गुरुमुख हैं।

गुरु अमरदास जी ने पहले रामदास जी को गोइंदवाल में बावली (छोटा सरोवर) का निर्माण करने की सेवा बख़्शी जो आपने सफलतापूर्वक पूरी की। फिर आपने गुरु साहिब की आज्ञा के अनुसार तुंग, गुमटाला, सुल्तानविंड आदि

गाँवों की ज़मीन ख़रीदकर वहाँ सन् 1574 ई. (वि. संवत् 1631) में 'गुरु का चक्क' नामक बस्ती आबाद की। गुरु साहिब ने वहाँ एक सरोवर भी बनवाया जिसका नाम रामदास सरोवर रखा। गुरु साहिब द्वारा निर्मित बस्ती का नाम 'रामदास पुर' में बदल गया। बाद में इस आबादी के पास का सारा इलाका अमृतसर शहर के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

गुरु अमरदास जी ने सितम्बर सन् 1574 ई. (2 असोज वि. संवत् 1631) में रामदास जी को अपने स्थान पर गुरु नियुक्त करके गुरु गद्दी पर आसीन किया। गुरु रामदास जी ने सतगुरु द्वारा सौंपे गये कार्य को बड़ी लगन से पूर्ण किया। आपके निष्काम और प्रेम भरे उद्यम से गुरुमत का ख़ूब प्रचार और प्रसार हुआ। दूर-दूर से शिष्य और श्रद्धालु अमृतसर में आकर बसने लगे। गुरु साहिब ने लंगर का सुधार और विस्तार किया तथा सत्संग के प्रबंधकीय ढाँचे को सुदृढ़ बनाया।

गुरु रामदास जी सात वर्ष तक गुरु गद्दी पर विराजमान रहे। आपने सितम्बर 1581 ई. (2 असोज वि. संवत् 1638) में सांसारिक यात्रा पूर्ण करने से पहले गुरु गद्दी अपने सबसे छोटे सुपुत्र अर्जुन देव जी को सौंप दी।

वाणी

आदि ग्रन्थ की सारी वाणी 31 रागों में है। गुरु रामदास जी ने 30 रागों में वाणी की रचना की। आपकी वाणी का विवरण इस तरह से है:

चउपदे-240; असटपदीआ-34; पहरा-1; वणजारा-6; सोलहे-3; छंत-40; श्लोक-134; पउड़ियाँ-183; कुल संख्या=641

गुरु साहिब की वाणी में वार, पहरे, वणजारा, करहले और छंतों के अतिरिक्त, घोड़िआं और लावां आदि अनेक काव्य रूप मिलते हैं।

गुरु रामदास जी की वाणी की सबसे बड़ी विशेषता, सरल वर्णन और साधारण भाषा है। वाणी साधारण भाषा में लिखी गयी है और आसानी से समझी जा सकती है।

आपकी वाणी में गुरमत के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। इसमें प्रभु, नाम और हुक्म की महिमा की गयी है। इसमें निर्मल आचरण और प्रभु की भक्ति द्वारा प्रभु के साथ मिलाप करने पर बल दिया गया है। गुरु साहिब की

वाणी में प्रेम और नम्रता का भाव प्रबल है और इसमें सतगुरु की महिमा का स्वर प्रधान है। आप एक प्रसंग में लिखते हैं:

राम गुर पारस परस करीजै॥
हम निरगुणी मनूर अत फीके मिल सतिगुर पारस कीजै॥[1]

आप कहते हैं कि मैं तो निकृष्ट लोहे की मैल था, पर सतगुरु ने मुझे अपनी शरण बख़्शकर अपना ही रूप बना लिया है। गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

तुमरे गुण किआ कहा मेरे सतिगुरा जब गुर बोलह तब बिसम होए जाए॥
हम जैसे अपराधी अवर कोई राखै जैसे हम सतिगुर राख लीए छडाए॥
तूं गुर पिता तूंहै गुर माता तूं गुर बंधप मेरा सखा सखाइ॥
जो हमरी बिध होती मेरे सतिगुरा सा बिध तुम हर जाणहो आपे॥
हम रुलते फिरते कोई बात न पूछता गुर सतिगुर संग कीरे हम थापे॥
धंन धंन गुरू नानक जन केरा जित मिलिऐ चूके सभ सोग संतापे॥[2]

आप कहते हैं: मेरे सतगुरु! मैं तेरे गुणों का किस तरह से वर्णन करूँ। जब तेरे नाम का उच्चारण करता हूँ तो मन आश्चर्य और आनंद से भर जाता है। मेरे जैसे घोर अपराधी का कोई ठिकाना नहीं था। सतगुरु ने दया करके मुझे बचा लिया है। हे सतगुरु! तू ही मेरा पिता है, तू ही मेरी माता है; तू ही मेरा मित्र, संबंधी और रक्षक है। सतगुरु जी! आपकी शरण के बिना हमारी जो दुर्दशा थी, आपको मालूम ही है। हम भटक रहे थे, हमारी कोई पहचान नहीं थी, आपकी शरण द्वारा हम जैसे कीट को भी बड़ाई और पदवी मिल गयी है। धन्य है, धन्य है हमारा सतगुरु, जिसकी संगति द्वारा हमारे सब दु:ख, क्लेश दूर हो गये।

लावां: रचना विधान

गुरु साहिब की वाणी का मूल भाव प्रभु की भक्ति और नाम की आराधना है। इस भाव को दर्शाने के लिये आपने अपने समय में प्रचलित अनेक काव्य रूपों

का प्रयोग किया। इस तरह आपने एकता में अनेकता और अनेकता में एकता का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है।

गुरबानी में एक तरफ़ समय से संबंधित काव्य के अनेक रूप प्रयोग किये हैं जैसे 'पहरे', 'दिन-रैणि', 'वार सत', 'थिती', 'रुती', 'बारहमाहा' आदि तथा दूसरी तरफ़ 'पटी', 'बावन अखरी' आदि काव्य के रूप भी प्रयोग किये हैं। 'वार' में किसी शूरवीर योद्धा का यश गाया जाता था। गुरु साहिबान ने 'वार' काव्य रूप को प्रभु का यश गायन करने के लिये प्रयोग किया है। गुरु साहिब ने मृत्यु की रस्म से संबंधित काव्य रूप 'अलाहणीआ' (अलाहुणीआं) का प्रयोग किया और विवाह की रस्म से संबंधित काव्य रूप 'छंत' के आधार पर भी वाणी रची। 'लावां' वास्तव में छंत ही है।

गुरु रामदास जी द्वारा सूही राग में रचित दूसरे छंत को चाहे कोई उपशीर्षक नहीं दिया गया पर आम तौर पर इसे 'लावां' कहा जाता है। इसमें आत्मा के परमात्मा से प्रेम संबंध को संयोग की अवस्था के शिख़र पर पहुँचाने के लिये की गयी तैयारी को लोक प्रचलित रस्म 'फेरों' अथवा 'लावां' के माध्यम द्वारा प्रकट किया गया है। गुरु साहिब ने 'लावां' को आध्यात्मिक रंग प्रदान किया है जिससे जीवात्मा की आध्यात्मिक उन्नति का पता चलता है। आजकल सिक्ख समाज में आनंद कारज (विवाह) के समय फेरों की रस्म करानेवाला पाठी लावां का पाठ करता है और दूल्हा-दुल्हन गुरु ग्रन्थ साहिब की चार बार परिक्रमा करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अलग-अलग काव्य रूपों का प्रयोग करने से गुरु साहिब का उद्देश्य, न तो काव्य कला का चमत्कार दिखाना है और न ही सांसारिक घटनाओं को प्रस्तुत करना है। आपने प्रत्येक काव्य रूप को प्रभु, सतगुरु, नाम, हुक्म, सत्संग, निर्मल आचरण आदि की महिमा का साधन बनाया है। हालाँकि आपने प्रत्येक काव्य रूप के अनुकूल भाषा और शैली का प्रयोग किया है, परंतु प्रत्येक काव्य रूप को वास्तव में अपनी आध्यात्मिक विचारधारा की प्रस्तुति का माध्यम बनाया है।

'लावां' शीर्षक से यह भ्रम नहीं उत्पन्न होना चाहिये कि इस वाणी का किसी बाहरी परंपरा के साथ कोई संबंध है। गुरु नानक साहिब तथा

गुरु अर्जुन देव जी ने 'बारह माहा' काव्य रूप द्वारा आत्मा की परमात्मा से जुदाई के हृदय विदारक दु:ख तथा परमात्मा से मिलाप के परम आनंद का उल्लेख किया है। इसी तरह 'लावां' के इन छंतों (छंदों) द्वारा अनादिकाल से प्रभु की जुदाई का दु:ख उठा रही आत्मा के पुन: उसके साथ मिलाप करने के साधन तथा मार्ग पर प्रकाश डाला गया है। आत्मा न स्त्री है, न पुरुष, और न ही इसका कोई मज़हब या जाति है। गुरु नानक साहिब का कथन है:

हमरी जात पत सच नाउ॥ करम धरम संजम सत भाउ॥[3]

आत्मा की वही जाति है जो सतनाम प्रभु की है। इसका सच्चा कर्म तथा सच्चा धर्म प्रभु का प्रेम है।

'लावां' के छंतों द्वारा गुरु साहिब, अन्य गुरु साहिबान की वाणी की तरह हर धर्म, जाति, देश तथा समय के हर जीव को परमात्मा से मिलाप के सर्वव्यापी, अनादि साधन तथा मार्ग के प्रति सचेत करते हैं।

गुरु साहिब ने इस वाणी में न किसी विशेष धर्म के कर्मकांड का समर्थन किया है और न ही विरोध। आपने न तो विशेष धार्मिक रिवाजों, चिह्नों, भेषों आदि का समर्थन किया है और न ही उनका खंडन किया है। आप पाप कर्मों के त्याग, सतगुरु की शरण, हृदय में प्रभु का प्रेम तथा भय धारण करते हुए, लिव को अंदर उसके शब्द यानी नाम के साथ जोड़ने का उपदेश देते हैं, क्योंकि यही पति परमेश्वर की दु:खदायी जुदाई को उसके मिलाप के आनंद में बदलने का एकमात्र सच्चा और संपूर्ण साधन है।

सूही महला ४ छंत घर १

१ ओ सतिगुर प्रसाद॥

हर पहिलड़ी लाव* परविरती करम द्रिड़ाइआ बल राम जीउ॥
बाणी ब्रहमा वेद धरम द्रिड़हो पाप तजाइआ बल राम जीउ॥
धरम द्रिड़हो हर नाम धिआवहो सिम्रित नाम द्रिड़ाइआ॥
सतिगुर गुर पूरा आराधहो सभ किलविख पाप गवाइआ॥
सहज अनंद होआ वडभागी मन हर हर मीठा लाइआ॥
जन कहै नानक लाव पहिली आरंभ काज रचाइआ॥१॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 773-74

लाव=विवाह के समय किये जानेवाले फेरे; **परविरती करम**=गृहस्थ जीवन, वापस आने की प्रक्रिया; **बल राम**=प्रभु; **तजाइआ**=छुड़वा दिया; **किलविख**=पाप।

सरलार्थ: पहली लाव में वापस घर आने की प्रक्रिया को बताया गया है। गुरु साहिब समझाते हैं कि धर्म ग्रंथों के उपदेश को ध्यानपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। इस उपदेश पर चलने से पापों से मुक्त होने में सहायता मिलती है। आप कहते हैं: प्रभु के नाम का ध्यान करना ही सच्चा धर्म है और यही धर्म धारण करना चाहिये। धर्म ग्रंथ भी यही उपदेश देते हैं। आप पूरे सतगुरु की भक्ति करने पर ज़ोर देते हैं। इस भक्ति से पापों का नाश हो जाता है। जिसके मन में हरि का मीठा नाम बस जाता है, वह भाग्यशाली जीव सहज आनंद की अवस्था प्राप्त करने में सफल हो जाता है। दास नानक कहता है कि पहली लाव भाव विवाह के फेरे द्वारा पति परमेश्वर के साथ मिलाप के कार्य का आरंभ हो गया है।

* लाव पद 'लू' धातु से बना है, जिसका अर्थ है तोड़ना।

❖ हरि पहिलड़ी लाव को इस लाव के अंत में आये वर्णन के साथ जोड़ते हैं: ***जन कहै नानक लाव पहिली आरंभ काज रचाइआ॥***– शादी की रस्म पहली लाव से शुरू होती है और चौथी के साथ संपन्न होती है। इसलिये गुरु साहिब पहली लाव को कार्य का आरंभ कहते हैं। इस कार्य का आरंभ कैसे हुआ? ***परविरती करम द्रिड़ाइआ बल राम जीउ॥***– 'परविरती' का अर्थ वापस आना भी है और प्रवृत्त होना भाव प्रवेश करना भी है। विवाह होने पर युवती मायके से ससुराल जा रही है। वह माता-पिता, भाई-बहनों, सखी-सहेलियों के मोह को त्यागकर अपने सुहाग के प्रेम की ओर आगे बढ़ने की तैयारी कर रही है।

परविरती करम का दूसरा अर्थ गृहस्थ जीवन है। कुँआरी युवती की शादी हो रही है। वह गृहस्थ धर्म में प्रवेश कर रही है। उसे कुँआरी अवस्था का आचार-व्यवहार त्यागकर विवाहिता के धर्म के पालन के लिये तैयार होना चाहिये। इसका पारमार्थिक भाव है कि जीवात्मा को झूठे मायावी जगत् की ओर से मुँह मोड़कर प्रभु की तरफ़ जानेवाले मार्ग पर चलना चाहिये। उसे संसार का मोह बढ़ानेवाले कार्यों के स्थान पर प्रभु के साथ मिलाप करवानेवाले साधन को अपनाना चाहिये।

गुरु साहिब संकेत करते हैं कि प्रभु के भक्त को अपनी वृत्ति बदलनी चाहिये। उसको 'कुँआरिओं' अर्थात् दुनियादारों वाली वृत्ति त्यागकर विवाहित, अर्थात् प्रभु भक्तों वाली वृत्ति अपनानी चाहिये। जिस कार्य का आरंभ ठीक न हो, उसका अंत कैसे ठीक हो सकता है? जिसे क, ख, ग नहीं आता, पहाड़े नहीं आते, वह ऊँची कक्षाओं में कैसे जा सकता है? इसलिये गुरु साहिब सावधान करते हैं कि प्रभुभक्त को यह अच्छी तरह से मन में धारण कर लेना चाहिये कि यदि परमार्थरूपी विवाहित जीवन सफल बनाना है, तो अपनी सोच और रहनी को उस जीवन की आवश्यकता अनुसार बदलना ज़रूरी है। गुरु नानक साहिब का कथन है: 'भगता तै सैसारीआ जोड़ कदे न आइआ॥'[1] माया के भक्तों और प्रभु के भक्तों का रहन-सहन अर्थात् जीवन एक जैसा नहीं हो सकता। सांसारिक जीवों की वृत्ति और रहनी कैसी होती है? 'सैसारी आप खुआइअन जिनी कूड़ बोल बोल बिख खाइआ॥ चलण सार न जाणनी काम करोध विस वधाइआ॥'[2] सांसारिक जीव कुमार्ग पर चल रहे हैं। उनका प्रेम

मायारूपी विष के साथ है। उनके अंदर विषय-विकारों की प्रचंड अग्नि है। भक्तों की वृत्ति और रहनी किस तरह की है? गुरु अमरदास जी का कथन है:

भगत करन हर चाकरी जिनी अनदिन नाम धिआइआ॥
दासन दास होए कै जिनी विचहो आप गवाइआ॥[3]

सांसारिक लोग माया के दास होते हैं और भक्त प्रभु के दास होते हैं। दुनियादार विषयों का विष पीते हैं, लेकिन भक्त नाम का अमृत पीते हैं। संसारी अहंकार के ग़ुलाम बने रहते हैं, जबकि भक्त अहं को त्यागकर हरि के भक्तों के दास बन जाते हैं।

माता-पिता और सगे-संबंधी शादी के समय दुल्हन को शिक्षा देते हैं कि तू गृहस्थ धर्म में प्रवेश करने जा रही है, तू ससुराल के आचार-व्यवहार सीख ले। गुरु साहिब उपदेश देते हैं: हे जीवात्मा! तुम प्रभु के प्रेम, प्रभु की भक्ति द्वारा उससे मिलाप का उद्देश्य लेकर चली हो। अपनी वृत्ति को उस उद्देश्य के अनुसार ढालने का प्रयत्न करो।

गुरु साहिब प्रेरणा देते हैं: ***बाणी ब्रहमा वेद धरम द्रिड़हो पाप तजाइआ बल राम जीउ॥***– प्रिय जीवात्मा! धर्म ग्रंथों के उपदेश से लाभ उठाकर, अपनी करनी को इस तरह से ढाल ले कि तू पापों से बची रहे। डॉक्टर की दवाई तभी असर करती है जब परहेज़ का पूरी तरह पालन किया जाये। परहेज़ किये बिना दवाई कैसे असर कर सकती है? इसी तरह पापकर्म और प्रभु की भक्ति इकट्ठे नहीं चल सकते। इनका रात और दिन जैसा संबंध है। जीवात्मा का उद्देश्य प्रभु की भक्ति द्वारा प्रभु से मिलाप करना है, जबकि पाप इसे आवागमन के दु:खदायी चक्कर के साथ बाँध देते हैं। वह प्रत्येक कर्म जो परमात्मा से दूर जाने का कारण बने, पाप है। इसलिये प्रभु की भक्ति में सफलता के लिये ऐसे प्रत्येक कर्म का त्याग कर देना चाहिये।

धरम द्रिड़हो हर नाम धिआवहो सिम्रित नाम द्रिड़ाइआ॥– गुरु साहिब परहेज़ बताने के बाद दवा भी बता रहे हैं। आप कहते हैं कि केवल पापों से बचना ही काफ़ी नहीं, प्रभु की भक्ति में लगना भी ज़रूरी है। केवल मन का बर्तन साफ़ करना ही काफ़ी नहीं, बल्कि इसमें नाम का अमृत डालना भी ज़रूरी है।

गुरु साहिब अधर्म के त्याग का और धर्म को ग्रहण करने का उपदेश देते हैं। 'धरम' क्या है ? गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

संतहो राम नाम निसतरीऐ॥
ऊठत बैठत हर हर धिआइऐ अनदिन सुक्रित करीऐ॥
संत का मारग धरम की पउड़ी को वडभागी पाए॥
कोट जनम के किलबिख नासे हर चरणी चित लाए॥[4]

आप किसी बहिर्मुखी क्रिया को नहीं, अपितु संतों के बताये मार्ग को धर्म की वास्तविक पउड़ी या पहली सीढ़ी बताते हैं। आप वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

सरब धरम मह स्रेसट धरम॥ हर को नाम जप निरमल करम॥[5]

सर्वोत्तम धर्म भी नाम का अभ्यास है और सबसे निर्मल कर्म भी नाम का अभ्यास है। इसलिये गुरु साहिब नाम द्वारा परमार्थ का धर्म पूरा करने की प्रेरणा देते हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि नाम का उपदेश वेदों में भी दिया गया है। आपका भाव है कि संसार के सब धर्म ग्रंथों में नाम को ही प्रभु प्राप्ति का साधन माना गया है। गुरु अमरदास जी का कथन है: 'वेदा मह नाम उतम सो सुणह नाही फिरह जिउ बेतालिआ॥'[6] लोग वेदों में दिये गये नाम का उपदेश तो सुनते नहीं, बेतालों की तरह अन्य साधनों के पीछे भटकते रहते हैं।

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

गुण गोबिंद नाम धुन वाणी। सिम्रित सासत्र बेद बखाणी॥
सगल मतांत केवल हर नाम॥ गोबिंद भगत कै मन बिस्राम॥[7]

केवल वेदों और स्मृतियों में ही नहीं, संसार के सभी धर्मों में सिर्फ़ नाम को प्रभु प्राप्ति का सच्चा और पूर्ण साधन माना गया है। इसलिये प्रभु के भक्त केवल नाम को ही मन में बसाने का प्रयत्न करते हैं।

सतिगुर गुर पूरा आराधहो सभ किलविख पाप गवाइआ– गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि पापों से छुटकारा प्राप्त करके प्रभु से मिलाप करना चाहते

हो, तो सतगुरु की सेवा और भक्ति करो। सतगुरु अपनी आत्मा प्रभु में अभेद कर चुके हैं, इसलिये उनकी भक्ति प्रभु की भक्ति यानी आराधना के समान होती है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

जो गुर कउ जन पूजे सेवे सो जन मेरे हर प्रभ भावै॥
हर की सेवा सतिगुर पूजहो कर किरपा आप तरावै॥[8]

कोई पुत सिख सेवा करे सतिगुरू की तिस कारज सभ सवारे॥[9]

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

सेवा सा प्रभ भावसी जो प्रभ पाए थाए॥
जन नानक हर आराधिआ गुर चरणी चित लाए॥[10]

प्रभु को सतगुरु की भक्ति अच्छी लगती है और सतगुरु को नाम की भक्ति प्रिय है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

नाम अमोलक रतन है पूरे सतिगुर पास॥
सतिगुर सेवै लगिआ कढ रतन देवै परगास॥[11]

आप समझाते हैं कि जो लोग सतगुरु की सेवा में लग जाते हैं, सतगुरु उनकी लिव नाम के साथ जोड़ देते हैं।

गुरु साहिब सावधान करते हैं कि गुरु का होना काफ़ी नहीं, गुरु पूर्ण होना चाहिये। गुरु नानक साहिब का कथन है:

केते गुर चेले फुन हूआ॥ काचे गुर ते मुकत न हूआ॥[12]

संसार में न तो गुरुओं की कमी है और न ही शिष्यों की, पर अधूरे गुरु से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। ठीक उसी प्रकार जैसे किसी अंधे आदमी के मार्गदर्शन में कोई व्यक्ति सही मार्ग पर नहीं चल सकता। आप कहते हैं:

अंधा आगू जे थीऐ किउ पाधर जाणै॥
आप मुसै मत होछीऐ किउ राह पछाणै॥[13]

गुरु अर्जुन देव जी ने पूर्ण गुरु की यह पहचान बतायी है कि वह स्वयं अकाल पुरुष से मिलाप कर चुका है और अपनी शरण में आनेवाले जीवों को भी उसके साथ मिलाने की योग्यता रखता है।

सत पुरख जिन जानिआ सतिगुर तिस का नाउ॥
तिस कै संग सिख उधरै नानक हर गुन गाउ॥[14]

गुरु रामदास जी की वाणी है:

जिस दै अंदर सच है सो सचा नाम मुख सच अलाए॥
ओह हर मारग आप चलदा होरना नो हर मारग पाए॥
जे अगै तीरथ होए ता मल लहै छपड़ नातै सगवी मल लाए॥
तीरथ पूरा सतिगुरू जो अनदिन हर हर नाम धिआए॥
ओह आप छुटा कुटंब सिउ दे हर हर नाम सभ स्रिसट छडाए॥
जन नानक तिस बलिहारणै जो आप जपै अवरा नाम जपाए॥[15]

गुरु साहिब समझाते हैं:

1. पूर्ण गुरु ऐसे निर्मल तीर्थ के समान है, जिसके पवित्र जल में स्नान करने से मन और आत्मा को लगी अनंत जन्मों की मैल साफ़ हो जाती है।
2. पूरा गुरु वह है, जिसके अंदर प्रभुरूपी सत्य समा चुका है।
3. पूरा गुरु केवल सच्चे नाम का गुणगान करता है, किसी अन्य साधन का प्रचार नहीं करता।
4. पूरा गुरु स्वयं भी नाम के साथ जुड़ा रहता है तथा अपनी शरण में आनेवाले जीवों को भी नाम के साथ लिव जोड़ने की युक्ति सिखाता है।
5. पूरा गुरु स्वयं भी भवसागर से पार हो चुका होता है और अपनी शरण में आये जीवों को भी भवसागर से पार ले जाने में सक्षम होता है।

गुरु रामदास जी का कथन है:

जिस मिलिऐ मन होए अनंद सो सतिगुर कहीऐ॥
मन की दुबिधा बिनस जाए हर परम पद लहीऐ॥[16]

पूरे गुरु के मिलाप से आनंद प्राप्त होता है, मन के संशय दूर हो जाते हैं और परमपद की प्राप्ति हो जाती है।

गुरु अर्जुन देव जी का कथन है: 'जनम मरण दुहहू मह नाही जन परउपकारी आए॥ जीअ दान दे भगती लाइन हर सिउ लैन मिलाए॥'[17] सच्चा गुरु परोपकारी होता है। वह कुछ भी स्वार्थ के भाव से नहीं करता, जो कुछ करता है, परोपकार के भाव से करता है।

सहज अनंद होआ वडभागी मन हर हर मीठा लाइआ॥– जितने ऊँचे और बड़े महल का निर्माण करना हो, नींव उसके अनुसार ही गहरी और मज़बूत होनी चाहिये। सहज अवस्था की प्राप्ति का महल, पापों के त्याग और सतगुरु के उपदेशानुसार नाम के अभ्यास की नींव पर खड़ा होता है।

नई-नवेली दुल्हन को सास-ससुर, देवर-देवरानियों, जेठ-जेठानियों और ननदों के बारे में कुछ भी पता नहीं होता और न ही पति को प्रसन्न करना आता है, इसलिये उसे सदा चिंता लगी रहती है। उसे कई तरह के उतार-चढ़ाव से गुज़रना पड़ता है। परंतु जब उसे पति के प्रेम का सहारा मिल जाता है, तो वह हर तरह के उतार-चढ़ाव, दु:खों और संकटों से ऊपर उठ जाती है। इसी तरह सतगुरु के उपदेशानुसार निरंतर नाम के अभ्यास में जुटे रहने से अभ्यासी जीवात्मा प्रभुरूपी पति को प्रसन्न करने में सफल हो जाती है। पहले मन-इंद्रियाँ, विषय-विकार, आशा-तृष्णा, दु:ख-सुख आदि भजन-सुमिरन में अनेक विघ्न पैदा करते थे। जब निरंतर यत्न द्वारा अभ्यास पक्का हो जाता है तो शब्द लगातार सुनायी देता रहता है। इस अवस्था में पहुँचकर जीवात्मा हर प्रकार के सांसारिक दु:खों और सुखों, उतार-चढ़ाव से ऊपर उठ जाती है। उसके अंदर इस तरह प्रेम और आनंद भरा होता है कि बाहरी हालात किसी तरह भी मन की शांति भंग नहीं कर सकते। इसके बारे में चौथी लाव में विस्तारपूर्वक विचार किया जायेगा।

जन कहै नानक लाव पहिली आरंभ काज रचाइआ– गुरु साहिब पहली पंक्ति वाला भाव दोहराते हुए कहते हैं कि इस तरह जीवात्मारूपी पत्नी का परमेश्वररूपी पति के साथ मिलाप का प्रयत्न आरंभ हो जाता है।

हर दूजड़ी लाव सतिगुर पुरख मिलाइआ बल राम जीउ॥
निरभउ भै मन होए हउमै मैल गवाइआ बल राम जीउ॥
निरमल भउ पाइआ हर गुण गाइआ हर वेखै राम हदूरे॥
हर आतम राम पसारिआ सुआमी सरब रहिआ भरपूरे॥
अंतर बाहर हर प्रभ एको मिल हर जन मंगल गाए॥
जन नानक दूजी लाव चलाई अनहद सबद वजाये॥ २॥

पुरख=शक्तिमान्, समर्थ; **पसारिआ**=व्यापक; **सरब**=सभी में।

सरलार्थ: दूसरी लाव द्वारा वह समर्थ स्वामी प्रभु, समर्थ सतगुरु के साथ मिलाप करवा देता है। इससे मन का भय दूर हो जाता है और अहंकार की मैल नष्ट हो जाती है। तब आत्मा को उस 'निर्मल भय' की प्राप्ति होती है; वह हरि के गुण गाने शुरू कर देती है और उसे अंदर प्रभु के दर्शन होते हैं। आत्मा का स्वामी वह प्रभु सर्वव्यापक है, वह सबके अंदर समाया हुआ है। अंदर-बाहर हर जगह वह एक प्रभु व्यापक दिखायी देता है और जीवरूपी स्त्री हरि के भक्तों के साथ मिलकर उसकी महिमा के मंगल गीत गाती है। दास नानक कहता है कि दूसरी लाव शुरू हो गयी है और अंदर में अनहद शब्द के बाजे बजने शुरू हो गये हैं।

❖ ***हर दूजड़ी लाव सतिगुर पुरख मिलाइआ बल राम जीउ॥***– गुरु साहिब ने पहली लाव में 'सतिगुर गुर पूरा आराधहो' का संकेत दिया है। अब 'सतिगुर पुरख' का संकेत देते हैं। 'पुरख' का अर्थ है शक्तिमान्। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि प्रभु के साथ मिलाने की शक्ति केवल पूरे सतगुरु में है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

मेरा ठाकुर वडा वडा है सुआमी हम किउ कर मिलह मिलीजै॥
नानक मेल मिलाए गुर पूरा जन कउ पूरन दीजै॥[18]

आप फ़रमाते हैं कि पूर्ण सतगुरु जीवात्मा को परमेश्वर के साथ मिलाकर उसका रूप बना देते हैं।

निरभउ भै मन होए हउमै मैल गवाइआ बल राम जीउ॥– वर्तमान अवस्था में जीवात्मा अहंकार के रोग और जन्म-मरण के भय से पीड़ित है।

जब सतगुरु दया करते हैं, तब जीव का मन पति परमात्मा के भय द्वारा अन्य सभी प्रकार के भय और हौंमैं के रोग से मुक्त हो जाता है।

निरमल भउ पाइआ हर गुण गाइआ हर वेखै राम हदूरे॥– गुरु साहिब ने इससे पहली पंक्तियों में 'निरभउ भै मन होए' द्वारा मन के सब प्रकार के भय से मुक्त हो जाने की बात कही है, अब 'भउ पाइआ' की बात क्यों कह रहे हैं? गुरु अंगद देव जी का कथन है: 'जिना भउ तिन्ह नाह भउ।'[19] आप कहते हैं कि जिनके हृदय में प्रभु का भय होता है, वे सब प्रकार के दूसरे भय से मुक्त हो जाते हैं। गुरु रामदास जी ने परमात्मारूपी पति के भय को 'निरमलु भउ' का नाम दिया है। पतिव्रता, पति से इसलिये नहीं डरती कि वह कोई सज़ा दे देगा। यह वह डर नहीं है जिसमें कोई निर्बल व्यक्ति शक्तिशाली से डरता है या कोई अपराधी अपराध का दंड देनेवाले से डरता है। ऐसा भय निर्मल नहीं है। पतिव्रता इसलिये पति से डरती है कि वह नाराज़ होकर उससे मुँह न फेर ले और वह उसके प्रेम से वंचित न हो जाये। यही निर्मल भय है। इस भय का आधार प्रेम और सम्मान है। गुरु अंगद देव जी की वाणी है:

दिसै सुणीऐ जाणीऐ साउ न पाइआ जाए॥
रुहला टुंडा अंधुला किउ गल लगै धाए॥
भै के चरण कर भाव कै लोइण सुरत करे॥
नानक कहै सिआणीऐ इव कंत मिलावा होए॥[20]

यह ठीक है कि प्रभु सर्वव्यापक है, परंतु जीव लंगड़ा तथा अंधा है, जिसके कारण वह उसके साथ मिलाप का आनंद प्राप्त नहीं कर सकता। इसे चाहिये कि भय के पैर बना ले, प्रेम के हाथ बना ले और सुरत यानी ध्यान की आँखें बना ले, फिर इसका सहजरूप से अपने प्यारे प्रीतम से मिलाप हो जायेगा। गुरु अमरदास जी का कथन है:

कामण गुणवंती हर पाए॥ भै भाए सीगार बणाए॥[21]

जो जीवात्मा भय और प्रेम के गुण अपना लेती है, वह सतगुरु के हुक्म का पालन करके प्रभुरूपी सत्य में समा जाती है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

भै कीआ देह सलाईआ नैणी भाव का कर सीगारो॥
ता सोहागण जाणीऐ लागी जा सौह धरे पिआरो॥[22]

आप समझाते हैं कि प्रभु की प्रसन्नता प्राप्त करने की इच्छुक जीवात्मा स्त्री को चाहिये कि आँखों में उसके भय का अंजन डाले और प्रेम का शृंगार करे। जब वह इस शृंगार द्वारा उसका प्रेम प्राप्त करने में सफल हो जायेगी, तभी सच्चे अर्थों में सुहागिन बनेगी। गुरु साहिब का भाव है कि जो कार्य प्रियतम को पसंद नहीं, उनका त्याग करना और जो कार्य प्रियतम को पसंद हैं, उनको उत्साहपूर्वक पूर्ण करना ही प्रियतम के निर्मल भय (भउ) और प्रेम (भाउ) को धारण करना है। जो जीवात्मा स्त्री, परमेश्वररूपी पति के डर में रहती हुई प्रेम और विश्वास के साथ उसकी भक्ति में लगी रहती है, उसे परमेश्वररूपी पति की निकटता प्राप्त हो जाती है। उसका पति से वियोग दूर हो जाता है और वह सदा उसके संग रहती है।

हर आतम राम पसारिआ सुआमी सरब रहिआ भरपूरे॥– जब जीवात्मारूपी स्त्री को अंदर प्रभु के दर्शन हो जाते हैं, तो उसे परमेश्वर सर्वव्यापी दिखायी देने लगता है।

अंतर बाहर हर प्रभ एको मिल हर जन मंगल गाए॥– जब अंदर प्रभु का दीदार हो जाता है, तो अंदर-बाहर, सृष्टि के कण-कण में उसी का नूर दिखायी देने लगता है।

गुरु साहिब वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

जिन सतिगुर जाता तिन एक पछाता॥
सरबे रव रहिआ सुखदाता॥
आतम चीन परम पद पाइआ सेवा सुरत समाई हे॥[23]

जब सतगुरु के माध्यम से अंतर में उस एक प्रभु की पहचान हो जाती है, तो सब सुखों का भंडार वह प्रभु सर्वव्यापक दिखायी देता है। उस अवस्था में पहुँचकर जीवात्मा गुरुमुख सहेलियों (आत्माओं) के साथ मिलकर प्रभु के मिलाप के आनंद भरे गीत गाती है।

गुरु साहिबान की वाणी में 'मंगल' तथा सोहिला पद, अनहद शब्द के आनंद भरे गीत के लिये प्रयुक्त किये गये हैं। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

मंगला हर मंगला मेरे प्रभ कै सुणीऐ मंगला॥
सोहिलड़ा प्रभ सोहिलड़ा अनहद धुनीऐ सोहिलड़ा॥
अनहद वाजे सबद अगाजे नित नित जिसह वधाई॥
से प्रभ धिआईऐ सभ किछ पाईऐ मरै न आवै जाई॥[24]

अनहद शब्द आनंद भरा मंगल गीत अर्थात् सोहिला है। उस मंगल गीत का आनंद सदा हृदय में स्थिर रहता है तथा उसके द्वारा प्रभुरूपी अविनाशी प्रियतम के साथ मिलाप हो जाता है। गुरु साहिब इस लाव की अगली पंक्ति में यही भाव प्रकट कर रहे हैं।

जन नानक दूजी लाव चलाई अनहद सबद वजाये॥– गुरु साहिब कहते हैं कि धर्म में प्रवृत्ति पापों का त्याग, भजन-सुमिरन और नाम का अभ्यास, पहली लाव या पहली पउड़ी थी। अंदर अनहद शब्द का प्रवाह चलना और जीवात्मा का शब्द के मंगल गीत गाते और सुनते हुए निज घर की ओर सफ़र शुरू कर देना दूसरी लाव है।

हर तीजड़ी लाव मन चाउ भइआ बैरागीआ बल राम जीउ॥
संत जना हर मेल हर पाइआ वडभागीआ बल राम जीउ॥
निरमल हर पाइआ हर गुण गाइआ मुख बोली हर बाणी॥
संत जना वडभागी पाइआ हर कथीऐ अकथ कहाणी॥
हिरदै हर हर हर धुन उपजी हर जपीऐ मसतक भाग जीउ॥
जन नानक बोले तीजी लावै हर उपजै मन बैराग जीउ॥ ३॥

सरलार्थ: तीसरी लाव का यह सार है कि संसार से विरक्त प्रेमी के हृदय में प्रियतम के मिलाप का प्रबल उत्साह पैदा हो जाता है। जिन भाग्यशाली जीवों का संतों के साथ मिलाप हो जाता है, उनका हरि के साथ भी मिलाप हो जाता है। हरि का गुणगान करते हुए जिस जीव

का निर्मल हरि के साथ मिलाप हो जाता है, वह उसकी मीठी वाणी बोलता है। प्रभु के भक्तों यानी संतों की संगति भाग्य से प्राप्त होती है। इससे उस अकथ प्रभु के गुणगान का शुभ अवसर प्राप्त होता है जिससे हृदय में हरि का नाम यानी शब्द की ध्वनि प्रकट हो जाती है और प्रभु द्वारा लिखे मस्तक के लेख के अनुसार उसके नाम का जाप करने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। दास नानक कहता है कि तीसरी लाव द्वारा मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया है।

❖ ***हर तीजड़ी लाव मन चाउ भइआ बैरागीआ बल राम जीउ॥***– गुरु साहिब बहुत सुंदर संकेत देते हैं। आप कहते हैं कि वर्तमान अवस्था में जीवात्मा का अपने पतिरूपी प्रभु के प्रति प्रेम निर्बल है। इसके अंदर प्रभु के प्रति सच्चा प्रेम और विरह, सुरत के अनहद शब्द के साथ जुड़ने के बाद पैदा होता है। वर्तमान अवस्था में न इसे पति की याद है और न ही इसके अंदर विरह की टीस है। शब्द का अनुभव होता है, तो अंदर विरह वेदना प्रबल हो जाती है और पति परमेश्वर के प्रेम का समुद्र हिलोर लेने लगता है। गुरु साहिब वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं: 'अंतर पिआस उठी प्रभ केरी सुण गुर बचन मन तीर लगईआ॥'[25] सतगुरु द्वारा उच्चारण किये गये पति परमेश्वर की महिमा के मीठे-प्यारे वचन, तीर की भाँति हृदय में बिंध गये और मन में उस प्यारे प्रियतम के साथ मिलाप की प्रबल इच्छा पैदा हो गयी।

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

खंभ विकांदड़े जे लहां घिंना सावी तोल॥
तंन जड़ांई आपणै लहां सो सजण टोल॥[26]

विरहिणी अपने प्रियतम का पलभर का वियोग सहन नहीं करती। वह चाहती है कि यदि उसे पंख लग जायें, तो वह उड़कर पलक झपकते ही प्रियतम के देश वापस पहुँच जाये। इस तरह विरह पैदा होने पर जीवात्मा स्वाभाविक रूप से संसार, शरीर और इंद्रिय भोगों से विरक्त हो जाती है। यह विरक्ति विरह से पैदा होती है। विरहिणी कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहती

जिससे प्रियतम के मिलाप में पलभर की भी देर हो जाये। जिस जीवात्मा के अंदर प्रभुरूपी प्रियतम के साथ मिलाप की प्रबल तड़प पैदा हो जाती है, उसका ध्यान पूरी तरह से प्रियतम की भक्ति में लीन हो जाता है, जिससे जुदाई का लंबा और दु:खदायी सफ़र जल्दी ही तय हो जाता है। बाबा फ़रीद अपनी विरह की तड़प को इस तरह से बयान करते हैं:

बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतान॥
फरीदा जित तन बिरह न ऊपजै सो तन जाण मसान॥[27]

आप कहते हैं कि विरह को पीड़ा का कारण कहा जाता है, पर वास्तव में वह प्रियतम के साथ मिलाप का सर्वोत्तम साधन है। जब तक हम किसी वस्तु की कमी महसूस नहीं करते, तब तक उसके लिये बलिदान करने के लिये तैयार नहीं होते। वियोग की पीड़ा का एहसास ही, मिलाप के लिये प्रयत्न करने की प्रेरणा देता है।

सब संतों और क़ामिल फ़क़ीरों ने विरह को प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक माना है। विरह प्रेम को प्रकट भी करता है और परिपक्व भी करता है। जिस प्रेमिका के हृदय में सच्चा प्रेम है, जब तक उसका प्रियतम के साथ मिलाप नहीं होता, तब तक वह उसके मिलन के लिये तड़पती रहती है। यह तड़प या पीड़ा ही प्रेमिका को वियोग का दु:खदायी सफ़र तय करके प्रियतम की मंज़िल तक पहुँचाने में सहायता करती है।

संत जना हर मेल हर पाइआ वडभागीआ बल राम जीउ– गुरु साहिब विरह के दु:ख का उपचार भी बता रहे हैं। आप कहते हैं कि वे जीव भाग्यशाली हैं, जिनका हरि की कृपा से, सतगुरु के साथ मिलाप हो जाता है, क्योंकि इस मिलाप द्वारा उनका हरि के साथ भी मिलाप हो जाता है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

भाग होआ गुर संत मिलाइआ॥ प्रभ अबिनासी घर मह पाइआ॥[28]

जब सतगुरु से मिलाप हो गया तो अंतर में अविनाशी प्रभु के दर्शन हो गये।

निरमल हर पाइआ हर गुण गाइआ मुख बोली हर बाणी– गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि जब हरि की वाणी द्वारा हरि के गुण गाने शुरू कर दिये, तो निर्मल हरि के साथ मिलाप का सौभाग्य प्राप्त हो गया। हरि की वाणी बोलने तथा हरि के गुण गाने से गुरु साहिब का अभिप्राय सतगुरु के उपदेशानुसार हरि की भक्ति द्वारा उसके शब्द (नाम) से लिव जोड़ना है। गुरु साहिब की वाणी है:

अनहद धुन वाजह नित वाजे गाई सतिगुर बाणी॥
नानक दात करी प्रभ दातै जोती जोत समाणी॥[29]

गुरु साहिब कहते हैं कि अनहद शब्द की ध्वनि के साथ लिव जोड़ना सतगुरु की वाणी गाना है। जो भाग्यशाली जीव प्रभु की दया द्वारा उस वाणी को गाते या सुनते हैं, उनकी आत्मारूपी ज्योति परमात्मारूपी परम ज्योति में समा जाती है। आप वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

गुण गावहो संत जीउ मेरे हर प्रभ केरे जीउ॥
जप गुरमुख नाम जीउ भाग वडेरे जीउ॥[30]

प्यारे संतजनो! सतगुरु के उपदेशानुसार हरि के गुण गाओ और उसके नाम का जाप करो, उसके नाम के साथ लिव जोड़ो। आप फ़रमाते हैं:

गुण गावह गुण उचरह गुण मह सवै समाए॥
नानक गुर पूरे ते पाइआ सहज मिलिआ प्रभ आए॥[31]

जो सतगुरु के उपदेशानुसार परमेश्वर के गुण गाता है, वह उसके गुण गाता हुआ, उसी में समा जाता है। गुरु अमरदास जी का कथन है:

से जन मिले धुर आप मिलाए॥ साची बाणी सबद सुहाए॥
नानक जन गुण गावै नित साचे गुण गावह गुणी समाहा हे॥[32]

जिनको प्रभु अपने साथ मिलाना चाहता है, वह उन्हें अपनी शब्दरूपी वाणी के साथ जोड़ देता है। वे उस वाणी द्वारा उसके गुण गाते हुए उसमें ही समा जाते हैं।

संत जना वडभागी पाइआ हर कथीऐ अकथ कहाणी॥– वर्तमान अवस्था में प्रभु अगम-अगोचर, अनंत, अथाह तथा अकथ-अकह है। संत-सतगुरु के उपदेशानुसार नाम के अभ्यास से उसके साथ मिलाप हो जाता है। प्रभु का साक्षात् अनुभव प्राप्त कर लेने से अलख की लखता हो जाती है। इसे ही ला-बयान को बयान कर लेना कहा गया है। भाव यह है कि प्रभु अकथ या वर्णनातीत है। परंतु सतगुरु की सहायता से आत्मा उसका अनुभव कर सकती है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

अकथो कथीऐ सबद सुहावै॥ गुरमती मन सचो भावै॥
सचो सच रवह दिन राती इह मन सच रंगावणिआ॥[33]

जब जीवात्मा के अंदर सतगुरु के उपदेशानुसार सच्चा प्रेम पैदा हो जाता है तो यह शब्द द्वारा प्रभुरूपी सत्य में समा जाती है। यही अकथ का कथन करना और अगम की गम्यता पा लेना है। गुरु नानक साहिब इसी भाव को इस तरह से प्रकट करते हैं:

सुखमन कै घर राग सुन सुंन मंडल लिव लाए॥
अकथ कथा बीचारीऐ मनसा मनहे समाए॥
उलट कमल अंम्रित भरिआ इह मन कतहु न जाए॥
अजपा जाप न वीसरै आद जुगाद समाए॥[34]

आप कहते हैं: नाम के अभ्यास द्वारा सुरत सुषुम्ना में पहुँच जाती है। जहाँ यह शब्द के दिव्य संगीत के साथ जुड़कर तीसरे रूहानी स्थान सुन्न मंडल या दसवें द्वार में पहुँच जाती है। उस अवस्था में मन और आत्मा की गाँठ खुल जाती है। उलटा पड़ा हृदय कँवल सीधा हो जाता है। भाव यह है कि ऊपर से नीचे और अंदर से बाहर जानेवाला चंचल मन, अचल होकर अंदर स्थिर हो जाता है। इस तरह हृदय नाम के अमृत से भर जाता है। उस अवस्था में आत्मा शब्द के अजपा जाप के साथ सदा जुड़ी रहती है। पहले इसे शब्द तक पहुँचने के लिये संघर्ष करना पड़ता था, अब शब्द सहज रूप में निरंतर सुनायी देता रहता है और आत्मा प्रभुरूपी आदि-जुगादि सत्य में, शब्द की धारा के सहारे

समा जाती है। यही प्रभुरूपी अकथ कथा का बोध हो जाने का वास्तविक भाव है।

हिरदै हर हर हर धुन उपजी हर जपीऐ मसतक भाग जीउ॥– शब्द की ध्वनि हरि के दरबार से आ रही है। इसलिये गुरु साहिब ने उसको हरि की ध्वनि कहा है। आप फ़रमाते हैं कि संतों के उपदेश के अनुसार ध्यान को अंतर में स्थिर करने से हरि की ध्वनि सुनायी देने लग गयी। वह ध्वनि अंदर ही थी, परंतु प्रभु द्वारा धुर के लिखे दया के लेख से प्रकट हुई। जब वह ध्वनि प्रकट हो गयी, तो सुरत उसके जाप भाव ध्यान में मग्न हो गयी। आपकी वाणी का एक अन्य प्रसंग है:

गुरमुखा नो पंथ परगटा दर ठाक न कोई पाए॥
हर नाम सलाहन नाम मन नाम रहन लिव लाए॥
अनहद धुनी दर वजदे दर सचै सोभा पाए॥[35]

जो गुरुमुख प्रभु के नाम के साथ लिव जोड़ लेते हैं, उनकी राह की सब रुकावटें दूर हो जाती हैं। उन्हें प्रभु के दरबार में पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है और वहाँ अनहद की ध्वनि सदैव सुनायी देती रहती है। आप कहते हैं:

अनहद धुनी सद वजदे उनमन हर लिव लाए॥
नानक हर भगति तिना के मन वसै जिन मसतक लिखिआ धुर पाए॥[36]

आप कहते हैं कि जिनके मस्तक में प्रभु ने दया का लेख लिखा होता है, उन्हें उनमुनि अवस्था प्राप्त हो जाती है जिसमें उन्हें अनहद की ध्वनि निरंतर सुनायी देती रहती है। गुरु साहिब ने उस ध्वनि से लिव जोड़ने को हरि का जाप करना कहा है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

अकथ कथा अंम्रित प्रभ बानी॥ कहो नानक जप जीवै गिआनी॥[37]

प्रभु के अमृत से भरपूर शब्द यानी वाणी की महिमा अकथनीय है। उस के जाप द्वारा पूर्व ज्ञानी को अमर जीवन प्राप्त हो जाता है। आप एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

गुर की बाणी सभ माहे समाणी॥ आप सुणी तै आप वखाणी॥
जिन जिन जपी तेई सभ निसत्रे तिन पाइआ निहचल थानां हे॥[38]

प्रभु की वाणी हरेक के अंदर व्याप्त है। प्रत्येक जीवात्मा को स्वयं उस वाणी को अंदर से अनुभव करना है। 'जिन जिन जपी'– उस वाणी के साथ लिव जोड़ना ही हरि का जाप करना या हरि की भक्ति करना है। जब जीवात्मा इस वाणी की ध्वनि के साथ जुड़ जाती है, तो इसका सोया हुआ भाग्य उदय हो जाता है। वह अभागिन से सौभाग्यवती बन जाती है।

जन नानक बोले तीजी लावै हर उपजै मन बैराग जीउ॥– गुरु साहिब ने दूसरी लाव में अनहद शब्द की प्राप्ति को दूसरा क़दम कहा था। आप कहते हैं कि सच्चा प्रेम पति परमेश्वर की प्राप्ति की ओर उठाया गया तीसरा क़दम है।

हर चउथड़ी लाव मन सहज भइआ हर पाइआ बल राम जीउ॥
गुरमुख मिलिआ सुभाए हर मन तन मीठा लाइआ बल राम जीउ॥
हर मीठा लाइआ मेरे प्रभ भाइआ अनदिन हर लिव लाई॥
मन चिंदिआ फल पाइआ सुआमी हर नाम वजी वाधाई॥
हर प्रभ ठाकुर काज रचाइआ धन हिरदै नाम विगासी॥
जन नानक बोले चउथी लावै हर पाइआ प्रभ अविनासी॥४॥

सहज=सहज अवस्था; **मन चिंदिआ**=मनोवांछित; **विगासी**=प्रसन्न हुई, खिल गयी।

सरलार्थ: चौथी लाव का सार है कि प्रभु से मिलाप की प्रबल तड़प ही आत्मा को परमात्मा से मिलाप की सहज अवस्था तक पहुँचा देती है। गुरु साहिब कहते हैं: सतगुरु की दया द्वारा सहज भाव से ही हरि के साथ मिलाप हो गया और तन-मन में हरि का मधुर प्रेम उत्पन्न हो गया। जब हरि को अच्छा लगा, तो हरि का नाम मीठा लगना शुरू हो गया और लिव सदैव के लिये हरि के साथ जुड़ गयी। मनोवांछित फल की प्राप्ति हो गयी, स्वामी के साथ मिलाप हो गया तथा हृदय हरि के नाम के आनंद से भर गया। उस हरिरूपी स्वामी ने (जीवात्मारूपी स्त्री के अपने साथ मिलाप का) जो कार्य स्वयं आरंभ किया था उसे स्वयं

ही संपूर्ण कर दिया। जीवात्मा स्त्री हरि के नाम द्वारा आनंद मग्न हो गई। दास नानक कहता है कि चौथी लाव द्वारा हरिरूपी अविनाशी वर की प्राप्ति हो गई।

❖ ***हर चउथड़ी लाव मन सहज भइआ हर पाइआ बल राम जीउ॥***– शब्द की पालकी में बैठी जीवात्मा, आंतरिक रूहानी सफ़र तय करती हुई अंत में परमेश्वर के दरबार पहुँच जाती है। वहाँ पहुँचकर उसे सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है।

सहज भइआ– जब तक आत्मा का परमात्मा के साथ मिलाप नहीं होता, तब तक इसके भ्रम दूर नहीं होते। जिस प्रकार घर से बाहर गया हुआ व्यक्ति घर पहुँचकर ही सुख की साँस लेता है, उसी प्रकार आत्मा निज घर पहुँचकर ही पूरी तरह से चिंता मुक्त होती है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

गुरमुख अंतर सहज है मन चड़िआ दसवै आकास॥
तिथै ऊंघ न भुख है हर अंम्रित नाम सुख वास॥
नानक दुख सुख विआपत नही जिथै आतम राम प्रगास॥[39]

जब तक जीवात्मा प्रभु से बिछुड़ी हुई है, तब तक यह द्वैत की सीमा में है। द्वैत में ऊँच-नीच, अमीरी-ग़रीबी, ख़ुशी-ग़मी, मान-अपमान, बीमारी-आरोग्य, अँधेरा-उजाला, पाप-पुण्य, जन्म-मरण आदि स्वाभाविक है। जब आत्मा दसवें द्वार को पार करके प्रभु के चरण कमलों तक पहुँच जाती है, तो यह द्वैत और उससे पैदा होनेवाले हर प्रकार के उतार-चढ़ाव से मुक्त हो जाती है। सचखण्ड में न नींद है, न भूख, न दु:ख, न सुख। वहाँ द्वैत या अनेकता के विष के लिये कोई स्थान नहीं। वहाँ पूर्ण एकता वाला नाम का अमृत भरपूर है। वहाँ मायारूपी अंधकार के लिये कोई स्थान नहीं, वह प्रभु के प्रकाश से परिपूर्ण है। गुरु साहिब इसी भाव को इस तरह से भी प्रकट करते हैं:

त्रिह गुणा विच सहज न पाईऐ त्रै गुण भरम भुलाए॥
पड़ीऐ गुणीऐ किआ कथीऐ जा मुंढहो घुथा जाए॥
चउथे पद मह सहज है गुरमुख पलै पाए॥[40]

जब तक जीव तीनों गुणों की त्रिलोकी में क़ैद है, तब तक माया के भ्रमों, संशयों, चिंताओं और उतार-चढ़ाव का शिकार है। जब तक जीव त्रिलोकी को पार नहीं करता, तब तक ग्रंथों या शास्त्रों का पाठ विचार कोई सहायता नहीं करता। सहज अवस्था गुरुमुखों की दया-मेहर द्वारा चौथे पद अर्थात् सचखण्ड में पहुँचकर प्राप्त होती है। गुरु अर्जुन देव जी ने 'सुखमनी' की नवीं अष्टपदी में सहज अवस्था का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। आप इस पद में कहते हैं:

जा कै सहज मन भइआ अनंद॥ ता कउ भेटिआ परमानंद॥[41]

सहज अवस्था में पहुँचकर जीवात्मा आनंदमग्न हो गयी और प्रभु की प्राप्ति हो गई।

गुरमुख मिलिआ सुभाए हर मन तन मीठा लाइआ बल राम जीउ॥– गुरु साहिब समझाते हैं कि गुरुमुखों की संगति द्वारा सहज ही प्रभु से मिलाप हो गया। इससे तन-मन की अवस्था बदल गयी। मायामय पदार्थों के बजाय प्रभु प्रिय लगने लगा।

हर मीठा लाइआ मेरे प्रभ भाइआ अनदिन हर लिव लाई॥– गुरु साहिब कहते हैं: प्रभु ने ऐसी दया की है कि वह प्रभु और उसका नाम मधुर लगने लगा है। प्रभु की दया से नाम के अमृत से आनंद मिलना शुरू हो गया है और लिव दिन-रात उस अमृत से भरे नाम के साथ जुड़ी रहती है।

मन चिंदिआ फल पाइआ सुआमी हर नाम वजी वाधाई॥– जीवात्मा कहती है: पति परमेश्वर से मिलाप की मेरी कामना पूरी हो गयी है। अनंत काल से बिछुड़े हुये अपने स्वामी के साथ मिलाप हो गया है। जिस विरहिणी का चिरकाल से बिछुड़े हुए अपने प्रीतम के साथ मिलाप हो जाये, उसके अंदर स्वाभाविक ही अनंत आनंद के झरने फूट पड़ते हैं। जीवात्मा कहती है कि मेरे अंदर खुशियों के गीत फूट पड़े हैं, अंदर ख़ुशी के अपार भंडार प्रकट हो गये हैं। गुरु अमरदास जी का कथन है:

अनद सुणहो वडभागीहो सगल मनोरथ पूरे॥
पारब्रहम प्रभ पाइआ उतरे सगल विसूरे॥[42]

जब प्रभु के साथ मिलाप हो गया, तो सब दु:ख-संताप दूर हो गये, सब मनोरथ सिद्ध हो गये तथा हृदय आनंद से भर गया। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

अनद बिनोद भए नित सखीऐ मंगल सदा हमारै राम॥
आपनड़ै प्रभ आप सीगारी सोभावंती नारे राम॥[43]

जिस भाग्यशाली जीवात्मा को पति परमेश्वर स्वयं दया करके अपने साथ मिलाप का सौभाग्य बख़्श देता है, उसे पूर्ण तथा स्थायी आनंद की प्राप्ति हो जाती है। आप कहते हैं:

दाझ गए त्रिण पाप सुमेर॥ जप जप नाम पूजे प्रभ पैर॥
अनद रूप प्रगटिओ सभ थान॥ प्रेम भगति जोरी सुख मान॥[44]

प्रभु के नाम द्वारा उनके चरण कमलों की आराधना करने से पापों के पर्वत घास के ढेर की तरह जलकर राख हो गये। आनंदरूप स्वामी सब जगह व्याप्त दिखायी देने लग गया और उसके प्रेम के रंग में रँगी सुहागिन को सहज सुख की प्राप्ति हो गयी।

हर प्रभ ठाकुर काज रचाइआ धन हिरदै नाम विगासी॥– गुरु साहिब कहते हैं कि जिस दूल्हे का विवाह है, उसने ही विवाह रचाया है। आपका भाव है कि जीवात्मारूपी स्त्री के प्रभुरूपी पति के साथ विवाह का कार्य शुरू भी प्रभु की दया से होता है और यह कार्य पूर्ण भी प्रभु की दया से होता है। जब जीवात्मा की लिव नाम के साथ जुड़ गयी तो हृदय में आनंद और प्रसन्नता के चश्मे फूट पड़े। जीवात्मा का हृदय आनंद से भर गया।

जन नानक बोले चउथी लावै हर पाइआ प्रभ अविनासी– आप कहते हैं कि पहली लाव से आरंभ हुआ आनंद कारज (आत्मिक विवाह की रस्म) चौथी लाव से संपूर्ण हो गया। जीवात्मा स्त्री का अविनाशी परमेश्वर पति के साथ मिलाप हो गया।

सार

गुरु साहिबान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी प्रत्येक वाणी पूर्ण रूहानी सिद्धांतों को सुंदर और अद्भुत ढंग से बयान करती है। इस वाणी द्वारा गुरु साहिब ने कुछेक पंक्तियों में ही जीवात्मा के सामने एक पूर्ण जीवन युक्ति सृजित की है। आपने अति सुंदर और सरल ढंग से समझा दिया है कि मनुष्य को संसार में किस तरह से रहना चाहिये और वह परमात्मा के साथ मिलाप का उद्देश्य कैसे पूरा कर सकता है।

गुरु साहिब समझाते हैं कि लोक तथा परलोक, स्वार्थ तथा परमार्थ, दोनों में सफलता के लिये हृदय में प्रभु का निर्मल भय धारण करना आवश्यक है। इससे जीव पाप कर्मों से बचता हुआ ऐसी रहनी अपनाने का यत्न करता है, जिसके द्वारा वह संसार की सब ज़िम्मेदारियाँ पूरी करता हुआ प्रभु के साथ मिलाप कर सके।

इस जीवन युक्ति का दूसरा आवश्यक अंग सतगुरु के उपदेशानुसार नाम का अभ्यास करना है। पापों से बचना तथा निर्मल रहनी धारण करना परहेज़ है और नाम का अभ्यास प्रभु के बिछोड़े को दूर करनेवाली औषधि है। बिना परहेज़ के औषधि असर नहीं करती और बिना औषधि के रोग दूर नहीं होता।

नाम के अभ्यास द्वारा जीव के अंदर प्रभु का सच्चा प्रेम पैदा हो जाता है जो उसको मायामय रचना के मोह तथा अहंकार के रोग से मुक्त कर देता है। यह प्रेम ही प्रबल होकर प्रभु के विरह की असह्य पीड़ा में बदल जाता है। वह पीड़ा जीव को दिन-रात अपनी लिव नाम के साथ जोड़कर रखने की प्रेरणा देती है, जिससे जीव को प्रभु से मिलाप की सहज अवस्था का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है।

गुरु साहिब प्रेरणा देते हैं कि प्रभु के मिलाप द्वारा जीव परिवर्तन, विनाश तथा आवागमन के दु:ख भरे जगत् से मुक्त होकर, पूर्ण अद्वैत के उस अचल अविनाशी धाम में पहुँचकर सहज आनंद का भागी बन जाता है। यही मनुष्य जन्म का वास्तविक उद्देश्य है और इसी की प्राप्ति में मानव जन्म की सच्ची सफलता है।